गांधीजी के जीवन के प्रेरणादायक प्रसंग

यदि मैं तानाशाह बना

मेरा जीवन ही मेरा संदेश है

मो. क. गांधी

कृपया यह ग्रन्थ नीचे निर्देशित तिथि के पूर्व अथवा उक्त तिथि तक वापस कर दें। विलम्ब से लौटाने पर प्रतिदिन दस पैसे विलम्ब शुल्क देना होगा।

यदि मैं तानाशाह बना

गांधीजी के जीवन के प्रेरणादायक प्रसंग

●

सम्पादक
विष्णु प्रभाकर

●

१९८१
सस्ता साहित्य मंडल,
श्रीकृष्ण जन्म-स्थान सेवा-संस्थान
का संयुक्त प्रकाशन

हुए उपलब्ध किये गए कागज पर मुद्रित है

प्रकाशक

यशपाल जैन
मंत्री, सस्ता साहित्य मंडल
एन ७७, कनॉट सर्कस, नई दिल्ली

श्रीकृष्ण जन्म-स्थान
सेवा-संस्थान
मथुरा

तीसरी बार : १९८१

मूल्य : तीन रुपये

मुद्रक
अग्रवाल प्रिंटर्स
दिल्ली

प्रकाशकीय

महात्मा गांधी उन महापुरुषों में से थे, जिन्होंने मनुष्य के चरित्र को सबसे अधिक महत्व दिया। वह मानते थे कि समाज की बुनियादी इकाई मनुष्य है। यदि वह अपने को सुधार ले तो समाज अपने आप सुधर जायगा।

अपनी इस मान्यता को व्यक्त करने से पहले उन्होंने अपने जीवन को कसौटी पर कसा। सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य आदि ग्यारह व्रतों का पालन किया और दूसरों द्वारा किये जाने का आग्रह रखा। दैनिक जीवन की छोटी-से-छोटी और बड़ी-से-बड़ी बातों में वह बराबर जागरूक रहे और अपने सिद्धान्तों पर दृढ़तापूर्वक चलते रहे।

इस पुस्तक-माला की दस पुस्तकों में उनके जीवन के चुने हुए प्रसंग दिये गये हैं। ये प्रसंग इतने रोचक, शिक्षाप्रद तथा प्रेरणादायक हैं कि कोई भी पाठक उनसे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता।

ये पुस्तकें गांधी जन्म-शताब्दी वर्ष में प्रकाशित हुई थीं। हाथों-हाथ बिक गयीं। कुछ के नये संस्करण हुए। कुछ के नहीं हो पाये। कागज और छपाई के दामों में असामान्य वृद्धि हो जाने के कारण उन्हें सस्ते मूल्य में देना असंभव हो गया। पर पुस्तकों की मांग निरन्तर बनी रही।

हमें हर्ष है कि अब यह पुस्तक-माला 'सस्ता साहित्य मंडल' तथा 'श्रीकृष्ण जन्म-स्थान सेवा-संस्थान' के संयुक्त प्रकाशन के रूप में निकल रही है। उसके प्रसंग कम नहीं किये गये हैं, पृष्ठ उतने ही रखे गये हैं, फिर भी मूल्य कम-से-कम रखा गया है।

हमें आशा ही नहीं, पूरा विश्वास है कि पाठक इस पूरी पुस्तक-माला को खरीदकर मनोयोगपूर्वक पढ़ेंगे और इससे अपने जीवन में भरपूर लाभ लेंगे।

—मंत्री

भूमिका

जो बात उपदेशों के बड़े-बड़े पोथे नहीं समझा सकते, वह उन उपदेशों में से किसी एक को भी जीवन में उतारने के समक्ष में आ जाती है। इसलिए गांधीजी कहते थे कि मेरा जीवन ही मेरा सन्देश है। उनके जीवन का यह सन्देश उनके दैनन्दिन जीवन की घटनाओं में प्रदर्शित और प्रकाशित होता है।

संसार के तिमिर का नाश करने के लिए मानव-इतिहास में जो व्यक्ति प्रकाश-पुंज की भांति आते हैं उनका सारा जीवन ही सत्य और ज्ञान से प्रकाशित रहता है। गांधीजी के जीवन में यह बात साफ दिखाई देती है। इस पुस्तक-माला में गांधीजी के जीवन के चुने हुए प्रसंगों का संकलन करने का प्रयास किया गया है। उनका प्रकाश काल के साथ मन्द नहीं पड़ता। वे क्षण में चिरन्तन के जीवन के किसी पहलू को प्रदर्शित करते हैं। उनकी प्रेरणा स्थानीय न होकर विश्वव्यापी है।

ये प्रसंग गांधीजी के जीवन से सम्बन्धित प्रायः सभी पुस्तकों के अध्ययन के बाद तैयार किये गए हैं। हर प्रसंग की प्रामाणिकता की पूरी तरह रक्षा की गई है। फिर भी वे अपने आपमें सम्पूर्ण और मौलिक हैं।

यह पुस्तक-माला अधिक-से-अधिक हाथों में पहुंचे तथा भारत की सभी भाषाओं में ही नहीं, वरन् संसार की अन्य भाषाओं में भी इसका अनुवाद हो, ऐसी अपेक्षा है। मैं आशा करता हूं कि यह पुस्तक-माला अपनी प्रभा से अनगिनत लोगों के जीवन को प्रेरित और प्रकाशित करेगी।

रंगनाथ दिवाकर

विषय-सूची

विचार जबतक आचरण के रूप में प्रकट नहीं होता, वह कभी पूर्ण नहीं होता। आचरण आदमी के विचार को मर्यादित करता है। जहां विचार और आचार के बीच पूरा-पूरा मेल होता है, वहीं जीवन भी पूर्ण और स्वाभाविक बन जाता है।

मो० क० गांधी

यदि मैं
तानाशाह बना

: १ :

यदि मैं तानाशाह बना

आराम करने की दृष्टि से एक बार गांधीजी मसूरी में ठहरे हुए थे। वे कहीं भी जायं, पत्रकार उनके पीछे-पीछे वहीं पहुंच जाते। उन दिनों तो कैबिनेट-मिशन भारत में आया हुआ था। भारत की स्वाधीनता की बात-चीत चल रही थी। एक विदेशी पत्र-प्रतिनिधि ने उनसे पूछा, "अगर आपको एक दिन के लिए भारत का तानाशाह बना दिया जाय तो आप क्या करेंगे?"

गांधीजी ने उत्तर दिया, "पहले तो मैं उसे स्वीकार ही नहीं करूंगा, परन्तु यदि मैं एक दिन के लिए तानाशाह बन ही गया तो दिल्ली के हरिजनों के झोंपड़े, जो वायसराय भवन के अस्तबल जैसे हैं, साफ करने में वह दिन बिताऊंगा।"

प्रतिनिधि ने कहा, "मान लीजिये कि लोग आपकी तानाशाही दूसरे दिन भी जारी रखें?"

गांधीजी सहज भाव से बोले, "तो दूसरे दिन भी वही पहले दिन का काम जारी रहेगा।"

मूंगफली के दूध का प्रयोग तो करो

गांधीजी दूध पीना पसन्द नहीं करते थे। डिब्बे के दूध से तो उन्हें अत्यन्त अरुचि थी। फिर भी जब वे दक्षिण अफ्रीका में रहते थे तब वहां कॉफी आदि का प्रयोग खूब चलता था। उसमें डालने के लिए दूध की जरूरत होती थी, लेकिन आवश्यकता के अनुसार दूध नहीं मिलता था। इसी कारण डिब्बे का दूध इस्तेमाल करना पड़ता था।

एक दिन गांधीजी ने रावजीभाई पटेल से कहा, "मुझे इस दूध का उपयोग करना अच्छा नहीं लगता। इसे बन्द करना चाहिए। क्या बादाम की गिरी का दूध निकाल कर उसका उपयोग हो सकता है? मुझे लगता है कि हो सकता है।"

रावजीभाई ने उत्तर दिया, "मैं ऐसा करके देखूंगा।"

और उन्होंने बादाम की गिरी को पानी के साथ घोटकर उसका दूध तैयार किया। उसे कॉफी में डाला, लेकिन पीने वालों को तनिक भी अन्तर नहीं मालूम हुआ।

गांधीजी बहुत प्रसन्न हुए, परन्तु शीघ्र ही उनके दिमाग में एक विचार उठा कि यह तो महंगा सौदा है। सोचते-सोचते इसका भी उन्हें एक उपाय सूझ गया। उन्होंने रावजीभाई से कहा, "बादाम की गिरी का दूध निकालकर कॉफी में डालना तो हमें बहुत महंगा पड़ेगा। तुम मूंगफली के दानों के दूध का प्रयोग तो करके देखो।"

दूसरे दिन रावजीभाई ने ऐसा ही किया। उस दिन भी किसी को पता नहीं चला। बस, उस दिन से फिनिक्स आश्रम में दूध को छुट्टी मिल गई।

: ३ :

मुझे पैसे का दुःख नहीं है

महात्माजी के आग्रह और आदेशानुसार एक बार ऐसी योजना बनाई गई कि श्री गोखले की आगामी पुण्यतिथि पर उनके भाषणों और निबन्धों का एक संग्रह गुजराती भाषा में प्रकाशित किया जाय। उसके संपादन का भार सौंपा गया श्री नरहरि द्वारकादास परीख को। अनुवाद एक ऐसे सज्जन को करना था, जो लेखक के रूप में काफी ख्याति प्राप्त कर चुके थे।

उस सज्जन ने जो अनुवाद किया, वह नरहरिभाई को अच्छा नहीं लगा। परन्तु चूंकि कई शिक्षकों ने उसकी तारीफ की थी, इसलिए वह पुस्तक छपने के लिए दे दी गई। जब वह करीब-करीब पूरी छप चुकी, तब उसके फार्म गांधीजी को देकर नरहरिभाई ने कहा, "आप ही इसकी भूमिका लिख दीजिए।"

गांधीजी ने दूसरे दिन नरहरिभाई को बुलाकर कहा, "नरहरि, यह भाषा तो बिलकुल नहीं चल सकती। ऐसा शाब्दिक अनुवाद कौन समझेगा? तुमने इसे पास कैसे किया?"

नरहरिभाई ने गांधीजी को सही स्थिति बता दी और कहा कि दूसरे शिक्षकों की तारीफ करने के कारण वह अपना स्वतन्त्र

मत व्यक्त नहीं कर सके। इस पर गांधीजी बोले, "लार्ड विलिंग-डन (बम्बई के तत्कालीन गवर्नर) ने बम्बई विश्वविद्यालय के गत उपाधि-वितरण के अवसर पर अपने भाषण में कहा था कि हिन्दुस्तान के स्नातकों में 'नहीं' कहने की हिम्मत नहीं है। सच है न? मैं तो तुमसे यही आशा करता हूं कि अगर यह अनुवाद तुम्हें नहीं जंचा था तो साफ 'नहीं' कह देना था। मैंने तुम्हें सम्पादक का काम सौंपा था। वह कर्त्तव्य तुमने पूरी तरह नहीं निभाया। अच्छा, पूरी किताब छप गई है क्या? अगर छप गई है तो भी हमें इसे रद्द करना होगा।"

नरहरिभाई ने कहा, "अबतक कोई सात सौ रुपये खर्च हो गए होंगे। क्या वे सब बेकार जायंगे?"

गांधीजी बोले, "तो क्या जिल्द बंधवा कर अधिक पैसे बिगाड़ने हैं! सात सौ तो क्या, अगर सात हजार रुपये भी व्यर्थ जायंगे तो मैं जाने दूंगा। ऐसी किताब जनता के आगे क्यों रखी जाय? मुझे पैसे का दुःख नहीं है। चिन्ता केवल इसी बात की है कि श्री गोखले की पुण्य-तिथि के केवल दो महीने रह गये हैं!"

: ४ :

गरीबों के प्रतिनिधि के लिए यही सबसे उपयुक्त है

गोलमेज परिषद् में भाग लेने के लिए गांधीजी पानी के जहाज से लंदन गये थे। जहाज पर पहुंच जाने के बाद उन्होंने

सबसे पहले सामान की जांच-पड़ताल की। उनकी पैनी निगाह से कुछ बचा न रहा। ढेर सारा सामान देखकर वह व्यथा से भर आए। बोले, "भाग्य से हम दूसरे दर्जे की कोठरी में यात्रा कर रहे हैं किन्तु मान लो, हम निचले दर्जे के मुसाफिर होते तो इतने सामान की व्यवस्था कैसे करते !"

महादेवभाई ने उत्तर दिया, "कुछ ही घंटों में हमें तैयार होना पड़ा था। हमने ये सब सूटकेस उधार लिये हैं। घर पहुंचते ही सब लौटा देंगे। इसके अतिरिक्त कई मित्रों ने अपनी फालतू चीजें हमें दे दी हैं। हम इन्कार नहीं कर सके। कुछ जानकार मित्रों ने हमें आवश्यक चीजों से लैस रहने की सलाह भी दी है। इसीलिए हमें यह सब करना पड़ा।"

इसी तरह के बहुत से जवाब उन्हें दिये गएं। लेकिन इससे वह और भी उत्तेजित हो उठे। उन्हें बड़ा आघात पहुंचा। बोले, "तैयारी के लिए समय अभाव के का बहाना करना उचित नहीं है। मित्रों से कह सकते थे कि हमें इस सामान की कुछ भी आवश्यकता नहीं है। लेकिन तुम तो जो कुछ आया, सब लेते गये, मानों तुम्हें लंदन में पांच वर्ष रहना हो। सूटकेस वापस कर दोगे, लेकिन इससे क्या ! अपनी गरीबी और परिग्रह के संबंध में क्या तुम्हारी यही धारणा है ? तुम या तो स्वयं अपने-को धोखा दे रहे हो या मुझे धोखा देना चाह रहे हो। तुमने मित्रों की सलाह ली तो तुम्हें उन्हींके साथ रहना चाहिए था। यहां तो मेरे साथ हो, इसलिए मेरी सलाह के अनुसार चलना चाहिए।"

अन्त में यह निश्चय किया गया कि सभी आवश्यक वस्तुएं

अदन से वापस लौटा दी जायं। इस कार्य में तीन दिन लग गये। चौथे दिन फिर उनके सामने सामान की सूची पेश की गई। उन्होंने कहा, "अब मैं तुम्हारी सूची में दखल नहीं दूंगा। मैं तो यही चाहता हूं कि लंदन की गलियों में तुम्हें उसी तरह घूमता देखूं, जिस तरह तुम शिमला में घूमा करते हो। यदि मैं देखूंगा कि तुम्हारे पास पर्याप्त कपड़े नहीं हैं तो अधिक ऊनी कपड़े प्राप्त करूंगा। विश्वास रखो कि वहां के लोग हमारे पास बढ़िया सूटकेस देखकर दुखी होंगे। यदि तुम हिन्दुस्तान में खादी के झोले से काम चला सकते हो तो इंग्लैंड में क्यों नहीं चला सकते? हमें कोई चीज ऐसी नहीं रखनी चाहिए, जो हम साधारण अवस्था में न रख सकते हों।"

इसका यह अर्थ हुआ कि दूरबीन और सफरी चारपाई जैसे सभी चीजें लौटा देनी पड़ीं। ऐसे अवसर पर वह मजाक करने से भी नहीं चूके। जब यह चर्चा चल रही थी तो श्री शुएब कुरेशी उनसे मिलने आये। गांधीजी बोले, 'अच्छा, शुएब, यदि नवाब साहब (भोपाल) की पार्टी में कोई साहब कश्मीरी दुशाले खरीदना चाहते हों तो मुझे बताओ। मित्रों ने मेरे लिए बहुत से शाल दिये हैं। उनमें एक शाल इतना मुलायम और बारीक है कि अंगूठी के बीच में से निकल सकता है। उन्होंने सोचा होगा कि करोड़ों भारतीयों का प्रतिनिधित्व करने के लिए यह शाल ओढ़कर ही मुझे गोलमेज परिषद में जाना चाहिए। अच्छा हो, बेगम साहिबा इस बहुमूल्य शाल को लेकर इसके बदले में गरीबों के उपयोग के लिए मुझे नकद रुपये दे दें। गरीबों के एकमात्र प्रतिनिधि के लिए यही सबसे उपयुक्त है।"

: ५ :

चार्ली, कार्यक्रम कैसा रहा ?

गांधीजी उन दिनों दक्षिण अफ्रीका में थे। एक बार गोपाल-कृष्ण गोखले ने दीनबन्धु एण्ड्रयूज को उनके पास भेजा। गोखले चाहते थे कि गांधीजी अपने विचारों में कुछ परिवर्तन करें। बेचारे एण्ड्रयूज को इस काम में तनिक भी सफलता नहीं मिली। उलटे वह स्वयं अपने विचारों में परिवर्तन करके गांधीजी के शिष्य बन गये।

एक दिन सवेरे गांधीजी को एण्ड्रयूज से कुछ काम था, लेकिन सब जगह खोज लेने पर भी वह मिल नहीं पा रहे थे। तभी किसी ने आकर बताया, "बापूजी, आज इतवार का दिन है। एण्ड्रयूजसाहब, गिरजाघर गये हुए हैं। आज वह वहां प्रार्थना करायंगे और फिर भाषण देंगे।"

गांधीजी ने कहा, "तो चलो, हम भी वहीं चलते हैं। एण्ड्र-यूजसाहब की बातें सुनेंगे।"

और वह तुरन्त गिरजाघर की ओर चल पड़े, लेकिन वह गिरजाघर तो केवल गोरों के लिए था। गांधीजी थे काले आदमी। वह अन्दर कैसे जा सकते थे? उन्हें रोक दिया गया। कहा, "आप इस गिरजे के अंदर नहीं जा सकते। पास में ही नीग्रो लोगों का गिरजाघर है। उसमें चाहें तो जा सकते हैं।"

गांधीजी ने उत्तर दिया, "मेरे यहां आने का उद्देश्य एण्ड्र-यूजसाहब का व्याख्यान सुनना था, इसलिए दूसरे गिरजे में

जाना व्यर्थ है।"

वह लौट आये। थोड़ी देर बाद एण्ड्रयूजसाहब भी आ गये। गांधीजी ने उनसे पूछा, "क्यों चार्ली, कार्यक्रम कैसा रहा ? मैं भी तुम्हारा भाषण सुनने गया था, लेकिन काला आदमी होने के कारण मुझे गिरजे के भीतर नहीं जाने दिया गया।"

यह सुनकर एण्ड्रयूजसाहब की आंखें डबडबा आईं। गांधीजी के हाथों को अपने हाथों में लेकर वह बोले, "मोहन, यह कैसी अजीब और शर्म की बात हुई! आज के मेरे व्याख्यान के प्रधान पुरुष तुम थे। मैं 'मोहनदास करमचन्द गांधी' पर बोल रहा था। सभी लोग एकाग्र मन से मेरी बात सुन रहे थे और उन्होंने तुम्हें ही अन्दर आने से रोक दिया!"

: ६ :

भाई, मैं लोभी ठहरा

एक दिन एक धनिक महाशय गांधीजी से मिलने के लिए आये। उनकी बातों का कोई अन्त नहीं था। देखते-देखते एक घंटा बीत गया और बाहर दूसरे मिलनेवालों की भीड़ सघन होती चली गई। उनमें एक डाक्टर भी थे। उन्हें गांधीजी से कोई बहुत जरूरी काम था। वह बहुत बेचैन हो रहे थे। एक घंटे बाद जब वह धनिक महाशय चले गये तो उनकी जान-में-जान आई।

अब उनकी बारी थी। वह अन्दर पहुंचे। परेशान तो थे ही।

कुछ कठोर होकर बोले, बापूजी, क्या आप उस बैल को दुह रहे थे ? उसमें से कुछ दूध निकला भी ?

अत्यन्त नम्र होकर मानों क्षमा मांग रहे हों, गांधीजी बोले, "भाई, मैं लोभी ठहरा। जिस तरह तुम सब लोगों की खुशामद करता हूं वैसे ही उनकी खुशामद भी कर रहा था। शायद किसी दिन देश के काम आ जायं।"

और यह कहकर वह हँस पड़े।

: ७ :

अब तुम्हारी बारी है

अस्पृश्यता-निवारण के संबंध में उन दिनों गांधीजी उड़ीसा में पैदल यात्रा कर रहे थे। सायंकाल के समय पड़ाव पर पहुंच कर प्रार्थना-सभा में अनेक व्यक्ति उपस्थित होते थे। वे कुछ-न-कुछ भेंट भी दिया करते थे। कभी वह भेंट नकद होती, कभी वस्तु के रूप में। प्रार्थना-प्रवचन के बाद गांधीजी उन वस्तुओं को नीलाम कर देते थे।

उस दिन वह कटक में थे। सदा की भांति लोगों ने बहुत-सी वस्तुएं भेंट में दीं। गांधीजी उन्हें नीलाम करने लगे। एक कुम्हार ने बाल-गोपाल (कृष्ण) की एक छोटी-सी मूर्ति भेंट में दी। उस बेचारे कृष्ण की भी नीलाम की बारी आ गई। गांधीजी ने उस मूर्ति को उठाया और बोले, "अब तुम्हारी बारी है।"

कलकत्ता के उद्योगपति श्री भागीरथ कानोड़िया उस

सभा में उपस्थित थे । वह हँसकर बोल उठे, "बापू, आपने तो कृष्ण को भी नीलाम पर चढ़ाने से नहीं बक्शा !"

गांधीजी खूब हँसे। बोले, "अरे, तुम जानते नहीं, यह तो सदा ही नीलाम होता रहा है। कोई नीलाम करनेवाला और खरीदनेवाला होना चाहिए।"

शायद कानोड़ियाजी को विश्वास नहीं आया। गांधीजी ने कहा, "क्या तुमने मीरा का वह पद नहीं सुना :

"माई मैंने गोविंद लीनो मोल,
कोई कहे सस्ता, कोई कहे महंगा, लीनो तराजू तोल।"

उस दिन सबसे अधिक कीमत उसी मूर्ति की मिली।

: ८ :

मेरा सच्चा डाक्टर राम ही है

नौआखाली प्रवास के समय एक शाम को दूध नहीं मिला। गांधीजी बोले, "तो क्या हुआ ! नारियल का दूध बकरी के दूध का काम अच्छी तरह देगा और बकरी के घी के स्थान पर नारियल का तेल खाया जा सकता है।"

मनु ने नारियल का दूध बकरी के दूध की तरह ही तैयार किया, लेकिन वह दूध पचने में भारी पड़ा। गांधीजी को दस्त आने लगे। शाम तक बहुत ही कमजोरी हो गई। खूब पसीना छूटा। एक बार तो उन्होंने दोनों हाथों से अपना सिर थाम लिया। यह देखकर मनु घबरा गई। उसने निर्मल दा (प्रो०

निर्मलकुमार बोस) को पुकारा। सोचा, सुशीलाबहन को बुलवाना चाहिए। कहीं कुछ हो गया तो मैं मूर्ख समझी जाऊंगी! सुशीलाबहन प्रार्थना से पहले ही चली गई थीं।

यह सोचकर उसने सुशीलाबहन को चिट्ठी लिखी और उनतक पहुंचाने के लिए निर्मलदा को देने चली। तभी सहसा गांधीजी जाग उठे। बोले, "मनुड़ी, तूने निर्मलबाबू को पुकारा, यह मुझे बिलकुल अच्छा नहीं लगा। पर तेरी उम्र को देख कर क्षमा करता हूं। फिर भी ऐसे समय में कुछ न करके हृदय से राम-नाम लेने की तुझसे आशा रखता हूं। मैं तो मन में राम नाम ले ही रहा था। तू भी निर्मलबाबू को पुकारने के स्थान पर राम-नाम लेना शुरू कर देती तो मुझे बहुत अच्छा लगता। अब तू इस बारे में सुशीला से न कहना, न उसे बुलाना। मेरा सच्चा डाक्टर राम ही है। उसे मुझसे काम लेने की गरज होगी तबतक वह जिलायेगा, नहीं तो उठा लेगा।"

मनु ने जब गांधीजी की ये बातें सुनीं तो उसने चिट्ठी वापस ले ली। गांधीजी बोले, "तो तूने सुशीला को चिट्ठी लिख ही दी?"

मनु ने उत्तर दिया, "जीहां।"

गांधीजी बोले, "आज तुझे और मुझे ईश्वर ने बचा लिया। यह चिट्ठी पढ़कर सुशीला दौड़ती हुई मेरे पास आती, वह मुझे जरा भी अच्छा न लगता। मैं तुझपर, अपने पर, चिढ़ता। यदि राम-नाम का मंत्र मेरे हृदय में गहरा उतर जायगा तो मैं कभी बीमार होकर नहीं मरूंगा। यह नियम हर आदमी के लिए है, केवल मेरे लिए नहीं।"

और गांधीजी उसी रात को पूर्ण स्वस्थ हो गये।

तुम सच कह रही हो

एक बार कस्तूरबा गांधी ने गांधीजी से कहा, "सारी दुनिया के लोग आपके पास आकर आपसे बातें करते हैं। अपने दिल की बातें आपसे कह लेते हैं, लेकिन मैं आपकी पत्नी हूं। हमेशा आपके नज़दीक रहती हूं, परन्तु फिर भी दिल खोलकर आपसे बातें करने का मौक़ा नहीं पाती। क्या यह मुनासिब है? मुझे भी तो आपके साथ अपने दिल की बातें करके अपनी अज्ञानता को दूर करने का मौका मिलना चाहिए। बाहर के लोग मुझसे ईर्ष्या करते होंगे कि मैं आप सरीखे महात्मा की धर्मपत्नी हूं। आपसे जी भर बातें करके सद्ज्ञान प्राप्त करती हूं, लेकिन मेरे दुख को कौन जाने? मुझे पांच मिनट भी बातें करने का समय नहीं मिलता।"

स्नेह-भरे स्वर में गांधीजी बोले, "तुम सच कहती हो। मुझे तुमको बातें करने के लिए समय ज़रूर देना चाहिए। तुम कहो, कितना समय दिया जाय?"

बा सकुचाकर बोलीं, "आपको तो सवेरे चार बजे उठने से लेकर रात को सोने के समय तक लिखने-पढ़ने और मिलनेवालों से बातें करने से जरा भी फुर्सत नहीं मिलती। मैं कैसे कहूं कि मुझे इतना समय दें। यह तो आप ही जानें।"

गांधीजी ने कहा, "अच्छा, तो आज से रात को सोते समय मेरे सिर पर बादाम का तेल लगाने का काम तुम संभाल लो।

उसी समय मेरे साथ बातें करने का अवसर भी मिलेगा। आज से कोई दूसरा आदमी मेरे सिर पर तेल नहीं लगा सकेगा। तुमको फुर्सत न हो तब तुम्हारे कहने पर ही कोई और इस काम को कर सकेगा।"

: १० :

मेरी सेवा का अर्थ दरिद्रनारायण की सेवा है

उन दिनों गांधीजी गुजरात का दौरा कर रहे थे। बोरसद पड़ाव की बात है। कमलनयन बजाज की असावधानी से उनके छानने के टुकड़ों में से एक टुकड़ा खो गया। यह तय था कि पता लगने पर गांधीजी को दुख होना था और यह भी निश्चय था कि वह पन्द्रह-बीस मिनट तक इस विषय पर कमलनयन को भाषण देंगे। इसलिए किसी तरह वह दिन तो कमलनयन ने निकाल दिया। अगले दिन गांधीजी का मौन-दिवस था। बहुत-से बड़े-बड़े नेता उनसे मिलने के लिए आनेवाले थे, इसलिए उस दिन भी उसकी सूचना उनको देना ठीक नहीं लगा। वह एक नया कपड़ा ढककर उनके खाने-पीने की चीज़ों को ले आये। सोचा था कि व्यस्तता के कारण शायद उनकी निगाह न पड़े, लेकिन गांधीजी की दृष्टि तो गृद्ध-दृष्टि थी। नया कपड़ा देखकर वह मुस्कराये और अंगुलियों के इशारे से कमलनयन को डांटते हुए मानो कहा, "मैं तुम्हारी चालाकी समझ गया हूं!"

और सचमुच मौन पूरा होने पर उन्होंने कमलनयन को बुलाया। पूछा, "क्या बात है?"

कमलनयन ने उत्तर दिया, "कपड़ा मेरी गफलत से खो गया, इसलिए मुझे दूसरा लेना पड़ा।"

उस समय कोई और आनेवाला था! वह बोले, "सवेरे प्रार्थना के बाद मेरे साथ घूमने चलना।"

अगले दिन सुबह कमलनयन उनके साथ घूमने गये। पीछे-पीछे और लोग भी थे। गांधीजी ने दर्दभरे स्वर में कहा, "ऐसी गफलत हमसे कैसे हो सकती है? दरिद्रनारायण की सेवा का हमारा व्रत है। अगर उसका खयाल रखें तो ऐसी गफलत कभी न हो। अपने काम में हमारा ध्यान रहे तभी हमारा चित्त एकाग्र हो सकता है, ज्ञान मिल सकता है और कार्य की सिद्धि हो सकती है, नहीं तो हमारी सेवा और कार्य का कोई अर्थ ही नहीं रह जाता।"

कमलनयन ने उत्तर दिया, "दरिद्रनारायण की सेवा का व्रत तो आपका है। मैं तो आपकी चाकरी में हूं।"

ऐसा कहकर वह बात को टालना चाहते थे, लेकिन गांधीजी तो और भी गम्भीर हो आये। उनके हृदय में मानो वेदना भरी हुई थी। बीस-पच्चीस मिनट तक समझाते रहे। बोले, "जब मैं दरिद्रनारायण की सेवा में लग गया तो मेरी सेवा करने का अर्थ भी दरिद्रनारायण की सेवा करना है। फिर तू तो जमनालालजी जैसे कुशल व्यापारी का बेटा है। ऐसी गफलत तो तुझसे हो ही कैसे सकती है! इसके अलावा तू तो कातता भी है। इसमें कितना परिश्रम होता है, यह तुझे मालूम है? वह कपड़ा खो गया। यह

तो एक जरा-सी बात है, पर अगर तू विचारेगा तो तेरी समझ में आ जायगा कि उसमें कितने व्यक्तियों का परिश्रम सम्मिलित था। खेती में कपास पैदा करनेवाले, किसान से लगाकर चुनने, लोढ़ने, धुनने, कातने, बुनने और धोनेवाले तक कितने लोगों के परिश्रम से यह कपड़ा तैयार हुआ। उस परिश्रम का आदर करना तो दूर रहा, अपनी लापरवाही से तूने उसका अनादर कर दिया। यह बात कैसे सहन हो सकती है? इस लापरवाही में हमारे स्वाभिमान को धक्का लगा है। इसका अगर तू विचार करेगा तो तुझे पश्चात्ताप हुए बिना न रहेगा।"

: ११ :

धन का सदुपयोग करना हमारा कर्तव्य है

बात सेवाग्राम की है। गांधीजी घूमने के लिए जा रहे थे। और लोगों के साथ-साथ कमलनयन बजाज और उनकी माताजी भी थीं। गांधीजी किसी से बातचीत करते हुए जा रहे थे कि उन्हें मार्ग में पूनी का एक छोटा-सा टुकड़ा दिखाई दिया। इशारे से उन्होंने उसे उठा लेने को कहा। तुरन्त एक लड़की ने उसे उठा लिया। इशारा कमलनयन की ओर था, इसलिए उन्होंने उस टुकड़े को लेना चाहा, लेकिन छोटी-सी वस्तु होने के कारण मांग नहीं सके।

गांधीजी लौटकर आश्रम पहुंचे। जब वह चर्खा कातने के लिए

बैठे तब सहसा उन्होंने उस पूनी के टुकड़े को याद किया। जिस लड़की ने उसे उठाया था उसकी खोज हुई। वह आई। गांधीजी ने कहा, "वह पूनी का टुकड़ा जो तुमने उठाया था, ले आओ।"

लड़की ने उत्तर दिया, "उसे तो मैं कचरे की टोकरी में फेंक आई।"

गांधीजी यह सुनकर बड़े क्रुद्ध हुए। बोले, "मैंने उसे उठाने के लिए इसलिए नहीं कहा था कि उसे तू कचरे की टोकरी में डाल आये।"

लड़की ने जवाब दिया, "मैं तो उसे कचरा समझकर ही उठा लाई थी। समझती थी कि वह कचरा गलत जगह पर पड़ा है, इसीलिए आपने उसे उठाने के लिए कहा है। मैं उसे कचरे के स्थान पर डाल आई।"

गांधीजी ने पूछा, "यदि वहां पैसा पड़ा होता तो क्या उसे भी उठाकर तू कचरे में डाल आती?"

लड़की ने उत्तर दिया, "नहीं।"

गांधीजी बोले, "वह भी पैसा ही था। असली धन क्या है, तुम्हें आश्रम में रहकर यह पहचानना आना चाहिए। जिसने उस पूनी के टुकड़े को पूरा काते विना छोड़ा, उसने तो धन फेंका ही, मैंने तुमसे उठाने को कहा तब भी तुम उस धन को नहीं पहचान सकीं। अब जाओ, उसे लेकर आओ।"

लज्जित स्वर में लड़की ने कहा, "बापू, मेरी गलती हुई। मैं आपकी बात पूरी तरह नहीं समझ सकी। अब मैं उस टुकड़े को स्वयं ही कात लूंगी। आप उसके लिए न ठहरें।"

लेकिन गांधीजी कब माननेवाले थे! वह तो उस टुकड़े को

स्वयं कातने को व्यग्र थे। आग्रहपूर्वक बोले, "उसे ढूंढ़कर लाओ। मैं कैसे विश्वास करूं कि आगे और गफलत न होगी। परिश्रम से धन बनता है और धन बनने पर उसका सदुपयोग करना हमारा कर्त्तव्य है।"

वह लड़की बहुत लज्जित हुई। तुरन्त जाकर कचरे में से उसने उस पूनी के टुकड़े को खोज निकाला। उसपर मिट्टी और घास के टुकड़े लिपटे हुए थे। वह कुछ फैल-सी भी गई थी। इसके बावजूद गांधीजी ने उसको पूरी तरह से कातने के काम में लिया। उससे जो धागा कता वह रंग में मैला था, लेकिन गांधीजी ने इस बात की तनिक भी चिन्ता न करते हुए कहा, "बुनने के बाद जब कपड़ा धुलेगा, तब यह मिट्टी भी उसमें से दूर हो जायगी।"

: १२ :

मैंने तो उससे अच्छी भारत-माता नहीं देखी

साप्ताहिक 'नवजीवन' के लिए गांधीजी को भारतमाता की एक ऐसे चित्र की आवश्यकता थी, जिसमें उसकी सच्ची झलक मिल सके। उनके आदेश पर सुपरिचित चित्रकार श्री रविशंकर रावल ने एक चित्र तैयार किया। जिस समय वह उस चित्र को लेकर गांधीजी के पास आये, संयोग से श्री हरिप्रसाद देसाई वहीं पर बैठे हुए थे। रावलजी ने वह चित्र उन्हें भी दिखाया, फिर उसे वह गांधीजी के पास ले गये।

गांधीजी को वह चित्र अच्छा लगा। उन्होंने निश्चय किया कि उसे अगले अंक में ही प्रकाशित किया जाय। यह सुनकर देसाई बड़े अप्रसन्न हुए। बोले, "आपने इस चित्र को पसन्द कर लिया। इसमें भारतमाता का राजमुकुट कहां है? भले ही वह धूल में रोंद दिया गया हो, लेकिन वह होना तो चाहिए। इसके बाल भी रूखे हैं और कपड़े भी इतने गन्दे हैं। यह तो मुझे भारत-माता नहीं, कोई भिखारिन मालूम होती है। रविशंकरजी जैसे चित्रकार को क्या कहूं और आपको भी क्या कहूं!"

गांधीजी चुपचाप सुनते रहे। रविशंकरजी तो ऐसे खड़े थे जैसे अदालत के कटघरे में गुनहगार खड़ा रहता है। देसाई की बात समाप्त होने पर गांधीजी ने दृढ़ता से उत्तर दिया, "मैं तो सारे हिन्दुस्तान में घूमा हूं, रविभाई ने जो चित्र बनाया है, मैंने तो उससे अच्छी भारत-माता कहीं भी नहीं देखी।"

: १३ :

अपना मैल छुड़ाकर पड़ोसी को नहीं दिया जा सकता

उन दिनों गांधीजी बंबई में श्री रेवाशंकर के पास ठहरे हुए थे। उस समय बम्बई के उपनगरों की कांग्रेस कमेटी के प्रधान श्री विट्ठलभाई पटेल थे और एक उप-मंत्री थे श्री जयसुखलाल मेहता। मेहतासाहब सांताक्रूज कांग्रेस कमेटी के प्रमुख भी थे।

गांधीजी की इच्छा थी कि विदेशी कपड़ों की होली जलाने

का कार्यक्रम सांताक्रूज से आरम्भ किया जाय। उनके दूसरे कार्य-क्रमों से लोगों का इतना मतभेद नहीं था, जितना विदेशी कपड़ों के जलाने से। श्री विट्ठलभाई पटेल और श्री जयसुखलाल मेहता ये दोनों भी इस संबंध में गांधीजी से सहमत नहीं थे। उनका विचार था कि प्रथम महायुद्ध के कारण टर्की आदि देशों में कपड़े की बहुत कमी हो गई है, तब विदेशी कपड़ा जलाने के स्थान पर ऐसे देशों को क्यों न भेज दिया जाय?

इसी समय गांधीजी का आदेश मिला कि उनका विचार कपड़े जलाने का यज्ञ सांताक्रूज से आरम्भ करने का है। अब तो वे लोग धर्मसंकट में पड़ गये। विट्ठलभाई पटेल ने श्री मेहता से कहा, "आप महात्माजी के पास जाकर उन्हें समझा आइये।"

श्री मेहता ने उत्तर दिया, "महात्माजी एक बार निश्चय कर लेने के बाद फिर उसे बदलते नहीं।"

फिर भी वह गांधीजी के पास गये। दो घंटे तक बातें होती रहीं। अंत में गांधीजी ने कहा, "अपना मैल छुड़ाकर पड़ोसी को नहीं दिया जा सकता। हम यह यज्ञ सांताक्रूज से ही आरम्भ करेंगे।"

उसी रात को ८ बजे गांधीजी ने स्वयं अपने हाथों से सांताक्रूज में विलायती कपड़े की होली जलाई।

और ज्यादा ताकत की इच्छा क्यों करते हो ?

बहुत पहले गांधीजी ने कच्चा अनाज खाने का प्रयोग किया था। और व्यक्तियों के साथ श्री रविशंकर व्यास ने भी उसमें भाग लिया था। गांधीजी पेट में दर्द होने के कारण बहुत दुबले हो गये, लेकिन श्री व्यास को कोई विशेष कष्ट नहीं हुआ।

एक महीना बाद गांधीजी की यह स्थिति हो गई कि बोलने भी उन्हें कष्ट होने लगा, लेकिन श्री व्यास जब उनके पास गये तो डाक्टर की आज्ञा का उल्लंघन करते हुए उन्होंने पूछा, "तुम्हारा शरीर कैसा है ?"

व्यासजी ने उत्तर दिया, "ठीक है।"

गांधीजी ने पूछा, "वजन कितना कम हुआ ?"

व्यासजी ने उत्तर दिया, "ज्यादा नहीं, तीन पाव ही कम हुआ, परन्तु कमजोरी बहुत मालूम होती है।"

गांधीजी ने पूछा, "काम क्या करते हो ?"

व्यासजी ने कहा, "सारे दिन सूत कातता रहता हूं। किसी दिन सफाई आदि का काम होता है तो वह भी कर लिया करता हूं।"

गांधीजी ने फिर पूछा, "इतना सब काम कर लेते हो ?"

व्यासजी ने कहा, "जीहां।"

इस पर गांधीजी बोले, "तब और ज्यादा ताकत की इच्छा

क्यों करते हो? जरूरत से ज्यादा ताकत शरीर में विकार उत्पन्न करती है और आत्मशक्ति का ह्रास करती है। दक्षिण अफ्रीका में इक्कीस मील पैदल चलकर मैं वकालत करने जाता था। शनिवार को तो बाईस मील पैदल चलता था। बड़े सवेरे उठकर रात की बनाई हुई रोटियां और नीबू का आचार साथ में बांध लेता था। रास्ते में जो झरना पड़ता था उसमें स्नान करके दफ्तर पहुंचता और खाना खाकर काम में लग जाता। शनिवार को छोड़कर और दिन शाम के समय गाड़ी में लौटता, इसलिए शरीर से जितने काम की जरूरत होती है उतनी ही ताकत की इच्छा होनी चाहिए।"

: १५ :

एक घण्टे अच्छी नींद आई

श्री थम्बी नायडू गांधीजी के दक्षिण अफ्रीका के साथी थे। उन्होंने अपने लड़के गांधीजी को सौंप दिये थे। उन्हींमें से एक लड़का मरण-शैया पर पड़ा हुआ था। दवाएं कर-करके बेचारा घबरा गया था। आश्रम में वह इसलिए आया था कि मौत आवे तो यहीं आवे।

बारी-बारी से सभी आश्रमवासी उसकी देखभाल करते थे। उन्हींमें गांधीजी भी एक थे। अपनी बारी के अतिरिक्त जब कभी विशेष देखभाल की आवश्यकता होती तब भी उन्हें हाजिर होना पड़ता था।

एक रात की बात है। बारह बजे उनकी बारी समाप्त हुई। उसके बाद श्री फड़के की बारी थी। गांधीजी ने उनसे कहा, "मुझे एक घंटे के बाद जगा देना।"

बीमार के पास बैठने से तो नींद आने का डर था। इसलिए श्री फड़के इधर-उधर घूमने लगे। १५ मिनट बाद, गांधीजी के बिस्तर के पास जाकर उन्होंने पाया कि वह गहरी नींद में सोये हुए हैं। बीमार की इतनी अधिक चिन्ता और इतनी गहरी नींद! श्री फड़के आश्चर्य से चकित हो उठे।

धीरे-धीरे एक घंटा बीत गया। श्री फड़के गांधीजी को उठाने जा रहे थे कि एक मिनट पहले ही उन्होंने पूछ लिया, "क्यों, वक्त पूरा हो गया न ?"

श्री फड़के को और भी आश्चर्य हुआ। गांधीजी बोले, "एक घंटे अच्छी नींद आई।"

और वह बीमार के पास जा बैठे। आध घंटे बाद बीमार ने उन्हींकी गोद में सिर रखकर प्राण छोड़े। उस समय उन्होंने किसीको भी नहीं जगाया।

: १६ :

ओह, मेरे अज्ञान का भी कुछ पार है

उन दिनों गांधीजी कोचरब वाले आश्रम में रहते थे। गर्मी के दिन थे, दोपहर का समय। जैन विद्वान सुखलालजी उनसे मिलने के लिए आए। उस समय वहां दीनबन्धु एन्ड्रूज आदि

और कई व्यक्ति थे। पंडित सुखलालजी के साथ भी कई मित्र थे। बातों-ही-बातों में गांधीजी ने पंडितजी से पूछा, "कहां से आ रहे हो ?"

पंडितजी ने जवाब दिया, "पाटण से।"

गांधीजी ने पूछा, "पाटण तो सिद्धपुर के पहले आता है न ?"

पंडितजी ने जवाब दिया, "नहीं, पाटण मुख्य लाइन पर नहीं है। मेत्राणा से जाने वाली ब्रांच लाइन पर है।"

गहरे अचरज में डूब कर गांधीजी बोले, "ऐसा ?"

फिर कई क्षण तक वह जैसे मंथन कर रहे हों, मौन ही रहे। फिर बोले, "ओह, मेरे अज्ञान का भी कुछ पार है !"

उसके बाद उन्होंने उस प्रदेश का नक्शा निकाला और सब रेलवे लाइन देख डाली।

: १७ :

तुम्हारा अन्दाज ठीक है

गांधीजी बैठे हुए हैं। आस-पास और भी नेता बैठे हैं। गम्भीर मंत्रणा चल रही है कि एक छोटी-सी काली चींटी बापू के पेट दिखाई देती है। बाबू जगजीवनराम उसे देखते हैं। वह ऊपर की ओर चढ़ती चली जाती है। फिर घूम कर पीछे जाती है। फिर ऊपर गले के पास आ जाती है। बाबू जगजीवनराम देख रहे हैं। उनके मन के भीतर एक जिज्ञासा जाग आई है।

देखें, बापू की अहिंसा की कसौटी क्या है? वे इस चींटी के साथ अब क्या करते हैं? इसीलिए वह चींटी की ओर से अपनी दृष्टि नहीं हटा पाते।

लेकिन बापू क्या बिलकुल अनभिज्ञ हैं? वह सबकुछ देख रहे हैं। यह भी देख रहे हैं कि बाबू जगजीवनराम की दृष्टि चींटी पर से हटाये नहीं हटती और उनके अन्तर में एक प्रश्न कौंध रहा है। वह धीरे-से अपना हाथ हटाते हैं और गले पर रेंगती हुई चींटी को और भी धीरे-से हटा देते हैं। तभी सहसा जगजीवनराम उनकी ओर देखते हैं। वह भी देखते हैं। दृष्टि मिलती है। जगजीवनराम अपने प्रश्न का उत्तर पाकर मुस्करा देते हैं और गांधीजी हंस पड़ते हैं।

यह हंसी बाबू राजेन्द्रप्रसाद का ध्यान आकर्षित करती है। वह पूछते हैं, "क्या बात है?"

गांधीजी बाबू जगजीवनराम की ओर इशारा करते हुए कहते हैं, "इनसे पूछो।"

जगजीवनराम चींटी की कहानी बताकर कहते हैं, "मुझे ऐसा लगता था कि बापू के मन में संघर्ष चल रहा है कि चींटी को हटाऊं या नहीं। उसको अपने शरीर पर से हटा देने की क्रिया से उसे कष्ट पहुंचेगा। क्या वह हिंसा नहीं मानी जायगी?"

यह सुनकर गांधीजी बड़े जोर से हंसे, "हां-हां, तुम्हारा अंदाज ठीक ही है।"

दूरबीन को समुद्र में फेंक दिया जाय

गांधीजी के जर्मन मित्र कैलनबैक को दूरबीनों का बहुत शौक था। दो-तीन बहुमूल्य दूरबीनें वह सदा अपने पास रखते थे। इस बात को लेकर गांधीजी से उनकी रोज ही बहस होती थी। गांधीजी उन्हें यह समझाने का प्रयत्न करते थे कि इस प्रकार बहुमूल्य वस्तुओं को अपने पास रखना हमारे आदर्श के, विशेषकर उस सादा जीवन के, जिसका हमने व्रत लिया है, बिल्कुल अनुकूल नहीं है।

एक बार दोनों समुद्र से यात्रा कर रहे थे। सहसा इस विषय को लेकर फिर गरमा-गरम बहस हो उठी। उस समय वे दोनों केबिन की खिड़की के पास खड़े हुए थे। सहसा गांधीजी ने कहा, "आपके और मेरे बीच इस प्रकार झगड़े हों, इससे तो यही अच्छा है कि दूरबीन को समुद्र में फेंक दिया जाय और फिर कभी इसकी चर्चा न की जाय।"

श्री कैलनबैक ने तुरन्त उत्तर दिया, "जरूर इस झगड़े की जड़ को फेंक ही दीजिए।"

जैसे उनको परख रहे हों, गांधीजी ने फिर कहा, "देखो, मैं फेंके देता हूं।"

कैनलबैक ने उसी दृढ़ता से उत्तर दिया, "मैं सच कहता हूं, फेंक दीजिए।"

और गांधीजी ने दूरबीन फेंक दी। उस समय उसका मूल्य

सात पौण्ड था। परन्तु उसका मूल्य उसके दामों में नहीं, बल्कि श्री कैलनबैक के उसके प्रति जो मोह था, उसमें था। फिर भी उन्होंने इस बात के लिए अपने मन को कभी दुखी नहीं होने दिया।

: १९ :

गांधी के पास किसी को चंगा करने की करामात नहीं

खादी-प्रचार के संबंध में भ्रमण करते हुए गांधीजी ढाका गये थे। एक दिन संध्या के समय क्या हुआ कि एक ७५ साल का बूढ़ा उनके सामने आकर खड़ा हो गया। वह तीस-चालीस मील से चल कर आया था और उनके दर्शनों के लिए बहुत व्याकुल हो रहा था। सामने आते ही उसने कहा, "मेरे सिर पर हाथ रख दीजिये।"

यह सोचकर कि वह जल्दी चला जायगा, गांधीजी ने उसके सिर पर हाथ रख दिया, लेकिन वह तो भावावेश में आ गया। चरणों में लोट-लोटकर रोने लगा। सब विस्मित-विमूढ़ से खड़े थे। कोई समझ नहीं पा रहा था कि बात क्या है। उस वृद्ध के गले में गांधीजी और बा की तस्वीर लटक रही थी। हृदय का तूफान निकल जाने पर जब वह शान्त हुआ तो बोला, "मैं नामशूद्र हूं। मुझ पर आपकी कैसी कृपा है। दस साल पहले मेरे पैर रह गये थे। कितनी दवाइयां कीं, परन्तु बिछौने से उठ न सका।

भगवान से मौत के लिए प्रार्थना करता रहता था। फिर आपका नाम लेने लगा। अब देखिये, चलने-फिरने लगा हूं। कोई दवा-दारू नहीं की। बस, आपका नाम लिया है।"

इतना कह कर वह फिर पैरों में लोट-पोट होने लगा। उसे मना करते हुए गांधीजी बोले, "भाई, भगवान का भजन करो। उसी ने तुम्हें चंगा किया है। गांधी के पास किसी को चंगा करने की करामात नहीं है।"

: २० :

ये सब मेरे प्रयोग हैं

एक सज्जन ने एक बार गांधीजी से पूछा, "बहुत से व्यक्तियों का यह विचार है कि आपका यह आश्रम नाना प्रकार के मनुष्यों के नमूनों का अजायबघर अथवा पागलखाना है। इस बारे में आपका क्या विचार है?"

गांधीजी बोले, "इस पागलखाने का सरदार कौन है? मैं या दूसरा कोई और? तुम्हीं बताओ। सेवाग्राम आश्रम में सयाने लोग कितने हैं?"

उन सज्जन ने उत्तर दिया, "जितने विवाहित हैं, जैसे महादेवभाई, किशोरलालभाई, नरहरिभाई और बा।"

गांधीजी बोले, "अच्छा, यही सही। लेकिन इन सबका सरदार तो मैं ही हूं न? तब मैं सयानों का सरदार भी हुआ। हुआ न? मुझे तो ये उपाधियां समान रूप से प्रिय हैं।"

सहसा वह गंभीर हो उठे। बोले, "तुम्हारी बात सच है। यह आश्रम पागलों की प्रयोगशाला के रूप में पहचाना जाय तो इसमें छोटेपन का अनुभव नहीं होना चाहिए। सचमुच मैं यहां भांति-भांति के प्रयोग करके जीवन के सत्यों को परखता हूं। तुमने जिन तरह-तरह के नमूनों की बात कही है उनके साथ मुझे दिन-रात अपने मन और मस्तिष्क को ठंडा रख कर व्यवहार करना पड़ता है। गम खाना होता है। ये सब मेरे प्रयोग ही तो हैं।"

: २१ :

दांत कुएं में फेंक दिया था न

उस दिन गांधीजी दांतों के डाक्टर के यहां अपना एक दांत निकलवाने के लिए गये। सुप्रसिद्ध लेखक श्री जैनेन्द्र कुमार और अन्य कई व्यक्ति उनके साथ थे। इधर गांधीजी कुर्सी पर बैठे, उधर एक मित्र ने जैनेन्द्रजी से कहा, "ऐसा न हो जैनेन्द्र, कि दांत डाक्टर के पास ही रह जाय ?"

जैनेन्द्रजी बोले, "हां, डाक्टर उसे रखना तो चाह सकते हैं।"

मित्र ने कहा, "यही तो। लेकिन दांत उनके पास जाना नहीं चाहिए।"

जैनेन्द्रजी स्वयं भी उसके महत्व को जानते थे। वह सावधान हो गये और जैसे ही दांत खींचकर बाहर आया कि उन्होंने आगे बढ़कर डाक्टर से कहा, "लाइये, इसे मैं धो दूं।"

अब वह दांत उनके कब्जे में था। धो-पोंछ कर उन्होंने उसे रुई में लपेटा और जेब में डाल लिया। अगले दिन एक और मित्र ने पूछा, "वह दांत क्या आपके पास है?"

जैनेन्द्रजी बोले, "जीहां, वह सर्वथा सुरक्षित है। भय की कोई बात नहीं है।"

लेकिन भय तो था। गांधीजी ऐतिहासिक थे। इसलिए उनका दांत भी ऐतिहासिक था। सो धीरे-धीरे अनेक मित्र उसको अपने अधिकार में लेने को उत्सुक हो उठे, लेकिन जैनेन्द्रजी थे कि सुनकर भी नहीं सुनते थे और समझकर भी नहीं समझते थे। हर बार विश्वास दिला देते कि वह दांत सुरक्षित है। किसीके लिए चिन्ता का विषय नहीं है, लेकिन एक दिन बातों-ही-बातों में स्वयं गांधीजी पूछ बैठे, "जैनेन्द्र, वह दांत तुम्हारे पास है?"

जैनेन्द्रजी ने उत्तर दिया, "जी, है तो।"

गांधीजी ने पूछा, "अभी है?"

जैनेन्द्रजी ने उत्तर दिया, "जीहां, है। आप क्या कीजियेगा?"

गांधीजी बोले, "क्या करूंगा? वापस मुंह में तो लगा नहीं पाऊंगा, लेकिन फिर भी भई, है तो वह मेरा न? मुझे दो।"

अब जैनेन्द्रजी कैसे मना करते! चुपचाप जेब से बाहर निकाल कर उनके आगे कर दिया और उन्होंने अपने एक अत्यन्त विश्वस्त व्यक्ति को बुलाकर वह दांत उसे सौंप दिया। कहा, "देखो, किसी गहरे कुएं में इसे डाल आओ।"

उस व्यक्ति ने निश्चय ही वह दांत किसी गहरे कुएं में डाल

दिया होगा, लेकिन गांधीजी इस प्रकार आसानी से आश्वस्त होने वाले नहीं थे। उससे पूछा, "वह दांत कुएं में फेंक दिया था न ?"

उस व्यक्ति ने उत्तर दिया, "जीहां।"

गांधीजी बोले, "गहरे कुएं में फेंका है न ?"

उस व्यक्ति ने कहा, "जीहां।"

गांधीजी फिर बोले, "ठीक याद है ? फेंक दिया था ?"

उस व्यक्ति ने विश्वास के स्वर में कहा, "जीहां।"

अब गांधीजी ने गहरी सांस ली।

: २२ :

तब तो नौकर तुमसे बढ़ गये

जुहू से विदा होकर जब गांधीजी पूना पहुंचे तो पता चला कि पेट और सिर पर प्रतिदिन गीली मिट्टी की जो पट्टियां चढ़ती थीं वे पीछे वहीं छूट गई हैं। तुरन्त शान्तिकुमार को पत्र लिखा कि पट्टियां भेज दें।

पत्र पाकर शान्तिकुमारजी ने इधर-उधर पूछताछ की, पर वे पट्टियां नहीं मिलीं। इसलिए उन्होंने खादी की नई पट्टियां बनवाकर उन्हें भेज दीं। गांधीजी का उत्तर आया, "मुझे नई पट्टियों की जरूरत नहीं थी, पुरानी पट्टियां ही भेजो।"

बेचारे शान्तिकुमार पुरानी पट्टियां कहां से लाते ! नौकरों ने बहुत पहले ही उन्हें चीथड़े समझकर फेंक दिया था और

गांधीजी थे कि फटे हुए कपड़ों में से काटकर पट्टियां बनवा लेते थे।

जब यह समाचार गांधीजी को मिला और शान्तिकुमार से उनकी भेंट हुई तो उन्होंने अच्छा-खासा भाषण दे डाला। उन्होंने कहा, "नई खादी की पट्टियां बनवा कर क्यों भेजीं? यह क्यों मान लिया कि पुरानी पट्टियां फेंक ही देनी थीं। तुम्हें किफायतशारी की बात किस तरह समझाऊं?"

शान्तिकुमार ने अपना बचाव करते हुए उत्तर दिया, "बापूजी, मैंने नहीं फेंकी, नौकरों ने ही फेंक दी थीं।"

गांधीजी बोले, "तब तो नौकर तुमसे बढ़ गये!"

: २३ :

रात को नींद तो ठीक आई न

श्री ग० वा० मावलंकर, जो बाद में लोकसभा के अध्यक्ष के रूप में प्रसिद्ध हुए, एक बार कस्तूरबा ट्रस्ट की बैठक में भाग लेने लिए सपत्नीक सेवाग्राम गये। एक कुटिया में उनके रहने का प्रबन्ध किया गया। उन्हें मधुमेह की बीमारी थी। भोजन में वह दूध अधिक लेते थे। गांधीजी इस बात को जानते थे।

सेवाग्राम में गाय का दूध होता था और वह प्रत्येक व्यक्ति को एक निश्चित मात्रा में मिलता था, लेकिन मावलंकरजी का स्वास्थ्य खराब है, उन्हें अधिक दूध की आवश्यकता होगी, इस कारण गांधीजी ने गोशाला के व्यवस्थापक को बुलाकर कहा,

"देखो, भाई मावलंकर और उनकी पत्नी कल यहां आ रहे हैं। स्वास्थ्य ठीक न होने के कारण उन्हें अधिक दूध की आवश्यकता है, इसलिए सबको एक निश्चित मात्रा में दूध देने का नियम उनके लिए लागू न कर बैठना। उनकी पत्नी से पूछ लेना कि वह नित्य कितना दूध लेते हैं ? उतना ही उन्हें देना। दही, छाछ आदि की व्यवस्था भी कर देना और हां, वह क्या शाक-सब्जी लेते हैं, यह सब भी मालूम कर लेना। फिर उसी के अनुसार प्रबन्ध कर देना।"

गांधीजी यहीं पर नहीं रुके। उन्होंने व्यवस्थापक से कहा, "यहां मच्छर बहुत होते हैं, इसलिए भाई मावलंकर और उनकी पत्नी के लिए मच्छरदानी की व्यवस्था करना न भूल जाना।"

एक रात उस कुटिया में बिताने के बाद दूसरे दिन सवेरे जब मावलंकरजी गांधीजी से मिलने के लिए गये तो उनका पहला प्रश्न यही था, "कहो, रात को नींद तो ठीक आई न ? मच्छरों का कष्ट तो नहीं हुआ ? व्यवस्थापक ने तुम्हें मच्छरदानी दी थी या नहीं ?"

: २४ :

यह सामूहिक मृत्यु का आनन्द है

अहमदाबाद में गांधीजी का आश्रम साबरमती नदी के तट पर था। १९२३ की वर्षा ऋतु में इतने जोर का पानी पड़ा कि

नदी में भयानक बाढ़ आ गई। आश्रम के निचले भाग में पानी भर गया। वहां पर जो पशु बंधते थे, उन्हें ऊंचे स्थान पर ले जाना पड़ा, लेकिन नदी का पानी तो किलोलें मारता हुआ ऊंचा, और ऊंचा, चढ़ता आ रहा था।

शहर से सरदार वल्लभभाई पटेल का संदेशा आया कि आश्रम खाली कर दिया जाय और सब लोग शहर चले आवें। इसके लिए सवारी का प्रबन्ध किया जा रहा है।

यह संदेशा पाकर गांधीजी चिन्तामग्न हो गये। उन्होंने सभी आश्रमवासियों को तुरन्त प्रार्थनास्थल में इकट्ठे होने के लिए आदेश दिया। नदी का पानी आश्रम के मार्गों पर लहराता हुआ बढ़ता चला आ रहा था। चारों ओर काल भगवान का रुद्र रूप उपस्थित हो गया था।

सब लोग आ गये तब गांधीजी बोले, "भगवान कालरूप में दर्शन देने के लिए आए हैं। मैं इनकी लपलपाती जीभ में एक क्षण में समा जाने की तैयारी कर रहा हूं। आश्रम खाली करके अहमदाबाद शहर जाने का निमन्त्रण भी आ गया है। कोई जाना चाहता है? मैं तो आश्रम के पशुओं को छोड़कर शहर में जाने की इच्छा नहीं रखता।"

उन दिनों बम्बई के एक वृद्ध खोजा गृहस्थ आश्रम में आये थे। गांधीजी ने उनसे शहर में जाने का आग्रह किया, लेकिन गांधीजी को अकेला छोड़ जाने से उन्होंने स्पष्ट इंकार कर दिया। उस समय प्रार्थना-स्थल में नदी का पानी किल्लोल करता हुआ बढ़ा जा रहा था। एक भाई ने गांधीजी से पूछा, "मृत्यु के सन्मुख आ जाने पर भी यह कैसा आनन्द है?"

गांधीजी ने तुरन्त उत्तर दिया, "यह सामूहिक मृत्यु का आनन्द है।"

: २५ :

सभी की ज़िम्मेदारी मुझपर है

आश्रम-जीवन के प्रयोग गांधीजी दक्षिण अफ्रीका से ही करते आ रहे थे। वहां भी उनके परिवार के अतिरिक्त और भी बहुत से व्यक्ति आश्रम में रहते थे। उनमें कुछ ऐसे लड़के भी थे, जो जरूरत से ज्यादा शरारती और आवारा थे। गांधीजी के अपने बेटों को उन्हीं के साथ रहना पड़ता था। किसी के साथ किसी प्रकार का कोई भेदभाव नहीं किया जाता था।

लेकिन कैलनबैक को भले और बुरे लड़कों का इस प्रकार एक साथ रहना बिलकुल अच्छा नहीं लगता था। एक दिन साहस करके उन्होंने गांधीजी से कहा, "मुझे यह सब अच्छा नहीं लगता। आपके बेटे इन लड़कों के साथ रहेंगे तो परिणाम अच्छा नहीं होगा। इन आवारा लड़कों की सोहबत से वे भी बिगड़ जायंगे।"

गांधीजी ने उत्तर दिया, "अपने बेटों और इन लड़कों में मैं भेदभाव कैसे कर सकता हूं? सभी की जिम्मेदारी मुझपर है। मेरे बुलाने पर ही तो वे यहां आए हैं। यदि मैं इन्हें रुपये दे दूं तो ये आज ही जोहानिसबर्ग जाकर पहले की तरह रहने लगेंगे। आश्चर्य नहीं कि इनके माता-पिता यह समझते हों कि इन लड़कों

ने यहां आकर मुझ पर मेहरवानी की है। आप और मैं इस वात को वहुत अच्छी तरह जानते हैं कि यहां इन लड़कों को असुविधा होती है। मेरे लड़के और वे सव एक साथ ही रहेंगे। मेरे लड़कों को यह अनुभव क्यों हो कि वे औरों से ऊंचे दर्जे के हैं। उनके दिमाग में ऐसे विचार डालना उनको उलटे रास्ते पर ले जाना है। इस स्थिति में रहने से उनका जीवन वनेगा ही, विगड़ेगा नहीं। वे भले-वुरे की परीक्षा करना सीखेंगे।"

: २६ :

तुम्हें आगे के लिए चेत जाना चाहिए

नोआखाली-प्रवास के समय गांधीजी ने अपनी पोती मनु के लिए एक कार्यकर्त्ता से पंजावी पोशाक तैयार करा देने के लिए कहा था। एक दिन वही कार्यकर्त्ता सध्या के समय उन कपड़ों को लेकर आ गये, लेकिन उन्होंने पैसा लेने से इंकार कर दिया। गांधीजी के भक्त थे और मनु उनकी पोती थी। इसी खयाल से वह दाम नहीं लेना चाहते थे।

गांधीजी ने पूछा, "तुम यह पैसा कहां से दोगे? तुम्हारे पास जो कुछ है, वह तो सार्वजनिक है। भले मैं ही क्यों न होऊं, मेरी जरूरतों के लिए भी तुम एक पाई इस प्रकार ख़र्च नहीं कर सकते और फिर इस लड़की के पिता तो इतना खर्च कर सकते हैं। एक जन-सेवक को सार्वजनिक धन का उपयोग कैसे और कहां किया जाय, इसका पूरा ध्यान रखना चाहिए। आज तो

तुमने मनु के लिए ऐसा किया है, कल को अपने संबंधियों के लिए भी ऐसा नहीं करोगे, इस बात का क्या भरोसा है? देखो, तुम पर मुझको बिलकुल शंका नहीं है, क्योंकि मैं तुम्हें अच्छी तरह जानता हूं। उस प्रेम के कारण ही मैंने यह सबकुछ कहा है, पर तुम्हें आगे के लिए चेत जाना चाहिए।"

: २७ :

मेरा हक सबसे अधिक है

गांधीजी मनुष्य थे, लेकिन इतिहास-पुरुष भी थे। इसलिए उनके आसपास जो कुछ था, उसका ऐतिहासिक मूल्य था। उनके शरीर के बालों का, दांतों का, उनके उपयोग में आने वाली अनेक वस्तुओं का, सभी का ऐतिहासिक मूल्य था। इसीलिए उन वस्तुओं की मांग रहती थी। एक दिन देवदासभाई ने देखा कि महादेवभाई के पास गांधीजी का एक दांत है। वह बोले, "यह दांत मुझे दे दो।"

महादेवभाई ने कहा, "क्यों दूं ?"

देवदासभाई ने पुत्र के अधिकार से कहा, "इसपर मेरा हक है। इसलिए दो।"

दोनों में काफी बहस हो गई। संयोग से गांधीजी उधर से आ निकले। बोले, "क्या बात है ? यह तकरार कैसी है ?"

महादेवभाई ने कहा, "मेरे पास आपका एक दांत है। उसे मैंने सहेज कर रखा है। देवदास उसे मांगता है। कहता है, इस

पर मेरा हक है।"

गांधीजी बोले, "हक की ही बात हो तो महादेव का ही हक अधिक माना जायगा, लेकिन वैसे मेरा हक सबसे अधिक है। इसलिए लाओ, मुझे दो।"

महादेवभाई कैसे इंकार करते! वह दांत लेकर गांधीजी ने स्वयं ऐसे स्थान पर फेंक दिया, जहां से उसका उद्धार होना संभव नहीं था।

: २८ :

उस कुटिया के पीछे रख आओ

शाम की प्रार्थना के बाद एक दिन गांधीजी बैठे हुए इधर-उधर की बातें कर रहे थे। रात कितनी बीत गई, बातों-ही-बातों में इसका किसीने ख्याल ही नहीं किया। बहुत देर के बाद गांधीजी उठने को हुए। वह अभी लेटने की स्थिति में ही थे कि उन्होंने पाया कि उनकी चादर पर एक सांप पड़ा हुआ है। आधे मिनट तक वह मौन रहे, फिर बोले, "दो आदमी यहां आओ और धीरे से इस चादर को उठा कर उस कुटिया के पीछे रख आओ।"

सुनकर लोगों को आश्चर्य हुआ, पर वे नहीं जानते थे कि बात क्या है? वे चादर ले गये और उसे रख देने पर ही वे उस सांप को देख सके। कुछ क्षण तक वह सांप वैसे ही पड़ा रहा, फिर धीरे-धीरे ऐसे चला गया, मानो कुछ हुआ ही न हो।

मेरा इतना सूत रखा है उससे बनवालो

एक बार सेठ जमनालाल बजाज की पुत्री मदालसाबहन सेवाग्राम गई तो उन्होंने बा से कहा, "खादी भंडार में कुछ साड़ियां आई हैं, आप उन्हें देख लें।"

बा ने सदा की भांति गांधीजी से पूछा, "एक साड़ी ले लें क्या ?"

गांधीजी ने कहा, "साड़ी चाहिए क्या ?"

बा ने जवाब दिया, "हां।"

गांधीजी बोले, "मेरा इतना सूत रखा है, उससे बनवा लो।"

बा को यह अच्छा नहीं लगा। उद्विग्न होकर बोलीं, "सूत मेरा भी रखा है।"

अब बा साड़ी कैसे ले सकती थीं, लेकिन मदालसा का मन रखने के लिए उन्हें खादी भण्डार तो जाना ही था। वह वहां गईं। मदालसा ने जबरदस्ती उन्हें एक बिस्तरबन्द सिलवा दिया। वापस सेवाग्राम लौटकर बा ने वह बिस्तरबन्द गांधीजी को दिखाया। बोलीं, "यह बिस्तरबन्द मदालसा ने जबरदस्ती सिला दिया है।"

गांधीजी ने पूछा, "तुम्हें चाहिए क्या ?"

बा ने उत्तर दिया, "नहीं।"

वह बिस्तरबन्द तुरन्त वापस लौटा दिया गया।

विदेशी भाषा में बोलें तो वह राष्ट्रभाषा सम्मेलन कैसा

सन् १९१७ में राष्ट्रीय कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन कलकत्ता में हुआ था। उसीके साथ हुआ था राष्ट्रभाषा सम्मेलन। लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक इसके सभापति थे। कांग्रेस और बंगाल के सभी नेता इसमें भाग लेने के लिए आये। लेकिन वे सब बोले अंग्रेजी में। सरोजिनी नायडू भी अंग्रेजी में ही बोलीं, यहां तक कि सभापति का भाषण भी अंग्रेज़ी में ही हुआ। लेकिन जब गांधीजी बोलने के लिए खड़े हुए तो जैसी हिन्दी वह उन दिनों जानते थे, उसीमें बोले। उन्होंने कहा, "लोकमान्य हमारे सबसे बड़े नेता हैं। वह चाहे जो करें, वह महत्व का है। परन्तु राष्ट्रभाषा का सभापति यदि विदेशी भाषा में बोले तो वह राष्ट्रभाषा सम्मेलन कैसा ?"

लोकमान्य ने उत्तर दिया, "आप ठीक कहते हैं, पर मेरी तो लाचारी है। मैं जरा भी हिन्दी नहीं जानता।"

बड़ी विनम्रता से गांधीजी ने कहा, "आप मराठी जानते हैं, संस्कृत जानते हैं। ये हमारे देश की भाषाएं हैं और ये सरोजिनी देवी तो बहुत अच्छी उर्दू जानती हैं। यह भी क्या अंग्रेजी में ही बोल सकती हैं ?"

उस क्षण के बाद हवा ही बदल गई। एक व्यक्ति भी अंग्रेज़ी में नहीं बोला। संध्या के समय लोकमान्य एक सार्वजनिक

सभा में भाषण देने के लिए गये। हिन्दी में बोलते हुए उन्होंने कहा, "आज मैं पहले-पहल हिन्दी में बोल रहा हूं। मेरी भाषा संबंधी कितनी गलतियां होंगी, यह मैं नहीं जानता, पर मैं मानता हूं कि हमारी राष्ट्रभाषा हिन्दी है और हमें इसमें ही अपना काम करना चाहिए।"

: ३१ :

मतभेद रहें तो सहन कीजिये और क्षमा दीजिये

उन दिनों देश में साम्प्रदायिकता की आंधी जोर से चल रही थी। स्थान-स्थान पर हिन्दू-मुस्लिम दंगे हो रहे थे। गांधीजी ने उसी समय 'यंग इण्डिया' में एक लम्बा लेख लिखा। शीर्षक था—"हिन्दू-मुस्लिम-तनाजा : उसके कारण और उपाय।" उस लेख में उन्होंने आर्यसमाज, सत्यार्थप्रकाश, स्वामी दयानन्द और शुद्धि के संबंध में भी अपने विचार प्रकट किये थे। दिल्ली के डा० युद्धवीर सिंह गांधीजी के परम भक्त थे। मगर वह आर्यसमाजी भी थे। अब भी हैं। इसलिए आर्यसमाज के संबंध में गांधीजी ने जो कुछ लिखा, उससे वह व्याकुल हो उठे। उन्होंने तुरन्त गांधीजी को एक लम्बा पत्र लिखा। उसमें अपने हृदय का दुःख उंडेलते हुए गांधीजी ने जो आक्षेप किये थे, उनका उत्तर दिया। आवेश के कारण उस पत्र में कड़वाहट भी भर गई।

एक सप्ताह के भीतर चार पैसे के सरकारी लिफाफे में

बन्द पीले कागज पर पेंसिल से लिखा उनका उत्तर डाक्टर-साहब को मिला। गांधीजी ने लिखा था :

भाई युद्धवीर सिंह जी,

आपका पत्र मिला। ऋषि दयानन्द की शिक्षा से बहुतों का भला हुआ है—उसका मैं थोड़ा इंकार करता हूं। मैंने तो त्रुटियां बताई हैं, वह भी मित्रभाव से कि जिससे समाज की प्रवृत्ति और भी लाभदायी बने और उसका जो अंश हानिकारक है उसको दुरुस्त किया जाय।

'सत्यार्थ प्रकाश' पर आर्यों का बहुत भाव होने के कारण मैंने उसको 'आर्यों का बाइबल' कहा। मैं ज्यादा नहीं लिखता, क्योंकि मैंने जो कुछ आगामी 'यंग इण्डिया' के लिए लिखा है, उस पर से बहुत कुछ साफ हो जायगा। यदि उसके बाद भी कुछ शक रहे तो अवश्य मुझको दुबारा लिखना और हमारे में मतभेद कायम रहें तो सहन कीजिये और क्षमा दीजिये।

आपका,
मोहनदास गांधी

: ३२ :

यह तकवा घिसने के लिए है

एक बार एक बड़े भारतीय अधिकारी अपने परिवार और मित्रों के साथ गांधीजी से मिलने के लिए सेवाग्राम की ओर चले। मार्ग में उनकी मोटर बिगड़ गई। सेवाग्राम बहुत दूर नहीं रह

गया था, इसलिए वे सब कार को वहीं छोड़कर पैदल ही सेवाग्राम पहुंचे। गांधीजी से मिलते ही उन अधिकारी बन्धु ने क्षमा मांगते हुए कहा, "मार्ग में मोटर बिगड़ जाने के कारण हम निश्चित समय पर नहीं पहुंच पाये।"

गांधीजी ने पूछा, "मोटर को क्या हो गया था ? क्यों रुक गई ?"

अधिकारी बोले, "मशीन में जंग लग गई है, उसे छुड़ाने के लिए रेगमाल की जरूरत थी। ड्राइवर के पास वह था नहीं और इस जंगल के बीच कहां मिलता ? इसलिए हम पैदल चल कर आये।"

गांधीजी ने तुरन्त अपनी छोटी-सी मेज में से रेगमाल का एक छोटा-सा टुकड़ा निकाला और उन अधिकारी महोदय को दे दिया। आश्चर्यचकित उन सज्जन ने पूछा, "आप यह रेगमाल यहां किसलिए रखते हैं ?"

गांधीजी ने उत्तर दिया, "यह तकवा घिसने के लिए है।"

भेंट करने के पश्चात जब वह अधिकारी महोदय बाहर आये तो उन्होंने अपने मित्र से कहा, "मैं रेगमाल के इस टुकड़े का उपयोग नहीं करूंगा। महात्माजी के साथ अपनी भेंट की स्मृति में इसे सदा संभाल कर रखूंगा और अपने वंशजों के लिए विरासत में छोड़ जाऊंगा।"

तुम्हारी तो मातृभाषा हिन्दी है

साबरमती आश्रम में एक विद्यालय था। शिक्षा का माध्यम गुजराती था। अधिकतर विद्यार्थी गुजराती थे। केवल दो महाराष्ट्रीय और एक उत्तर भारतीय, ये तीन गुजराती भाषाभाषी नहीं थे।

उस विद्यालय में गांधीजी एक दिन तुलसीकृत रामायण और एक दिन जान बनियन की 'पिलग्रिम्स प्रोग्रेस' पढ़ाया करते थे। उनका यह नियम था कि अगला पाठ पढ़ाने से पहले वह पिछले पाठ का अर्थ यहां-वहां से पूछ लेते थे, इसलिए सारे विद्यार्थी पिछला पाठ याद करके आते थे। उस दिन उन्हें रामायण पढ़ानी थी। वह आये, पिछले पाठ का एक दोहा उन्होंने पढ़ा और कहा, "इसका अर्थ बताओ।"

पहले दो लड़के उसका अर्थ नहीं बता सके। तीसरे नम्बर पर थे मार्तण्ड उपाध्याय। गांधीजी ने पूछा, "मार्तण्ड, तुम बताओ इसका क्या अर्थ है ?"

अर्थ मार्तण्ड को भी नहीं आता था। वह समझे बैठे थे कि यह कक्षा तो अहिन्दी-भाषियों के लिए है, उनसे कुछ नहीं पूछा जायगा। लेकिन गांधीजी क्या मानने वाले थे! अपना प्रश्न उन्होंने फिर दोहराया, "बताओ इस दोहे का क्या अर्थ है ?"

मार्तण्ड जितना कुछ जानते थे, बता दिया। लेकिन गांधीजी उस उत्तर से संतुष्ट नहीं हुए। उन्होंने दूसरे, तीसरे, फिर चौथे

विद्यार्थी से पूछा। एक ने सही अर्थ बता दिया। गांधीजी बड़े प्रसन्न हुए और मार्तण्ड की ओर घूम कर बोले, "मार्तण्ड, तुम्हारी तो मातृभाषा हिन्दी है और तुम्हें इस दोहे का अर्थ ठीक से नहीं आया !"

इतने विद्यार्थियों के सामने गांधीजी ने जो उलहना दिया तो विद्यार्थी मार्तण्ड को रोना आ गया। वह सहम गये। आंखों से टपटप आंसू गिरने लगे। गांधीजी बोले, "रोने से क्या होगा ? मेहनत करके पाठ याद किया करो। यह मानकर मत चलो कि हिन्दी भाषी को हिन्दी के पाठ याद करने की जरूरत नहीं।"

: ३४ :

मैं लाश को आपके सुपुर्द कैसे करूं ?

आगा खां महल में अचानक महादेव देसाई की मृत्यु हो गई। प्रश्न उठा कि उनका अन्तिम संस्कार कहां और कैसे किया जाय ?

सरकार के आदेश लेकर जब मेजर भंडारी लौटे तो उनका चेहरा सूखा हुआ था। गांधीजी ने पुछवाया, "वल्लभभाई आते हैं क्या ?"

उत्तर मिला, "वह यहां नहीं हैं।"

गांधीजी ने पुछवाया, "वह नहीं आ सकते ?"

भंडारी गांधीजी के सामने आने से बचना चाहते थे। अपने आगे उन्होंने सरोजिनी नायडू को कर लिया था। बापू

ने जब उनसे पूछा, "आप क्या खबर लाये हैं ?" वह हिचकिचाते हुए बोले, "मैंने सब इंतजाम कर लिया है।"

बापू ने पूछा, "क्या इंतजाम कर लिया है ? क्या मैं शव को मित्रों के हवाले कर सकता हूं ?"

इस प्रश्न का उत्तर दिया सरोजिनी नायडू ने। वह बोलीं, "सरकार शव किसी को नहीं देना चाहती। भंडारी स्वयं घाट पर जाकर जला आयेंगे।"

गांधीजी ने पूछा, "क्या हममें से कोई शव के साथ जा सकता है ?"

उत्तर मिला, "नहीं।"

बापू ने पूछा, "क्या मैं यहां अपने सामने शव को जलवा सकता हूं ? मैं लाश को आपके सुपुर्द कैसे करूं ? क्या कोई पिता अपने पुत्र की लाश अजनबी आदमियों के हाथ सौंप सकता है ?"

इस प्रश्न का कोई उत्तर भंडारी के पास नहीं था। इसलिए बम्बई सरकार से सलाह करने के लिए वह फिर ऊपर गये। दर्द-भरे स्वर में गांधीजी बोले, "श्रद्धानन्दजी के कातिल की लाश फांसी के बाद जनता को दे दी गई थी। लोगों ने उसको शहीद बनाया। उसका जलूस निकाला। उस कारण हिन्दू-मुस्लिम झगड़ा हो सकता था। मगर सरकार ने परवा नहीं की। आज वह महादेव का शव नहीं देने देती। मैं सोच रहा हूं कि क्या मुझे इस प्रश्न पर लड़ लेना होगा ? या कड़वी घूंट पीकर रह रह जाना होगा ? मैं इस बात पर अड़ सकता हूं। मगर वह महादेव की मृत्यु को राजनैतिक रंग देकर उससे फायदा उठाने

जैसी बात हो जायगी। पिता अपने पुत्र की मृत्यु का उपयोग ऐसे कैसे कर सकता है ?"

गांधीजी का यह आत्म-मंथन देखकर सब लोग बहुत डर रहे थे। यदि सरकार ने उनकी यह बात भी स्वीकार नहीं की तो वह उपवास कर सकते हैं। इसलिए उन लोगों ने भंडारी से आग्रह किया कि वह सरकार को पूरी स्थिति से अवगत करा दें और शव को यहां जला दें।

थोड़ी देर बाद भंडारी लौट आए। बड़ी कठिनता से वह शव को वहां जलाने की आज्ञा प्राप्त कर सके थे।

: ३५ :

राज के मालिक नहीं ट्रस्टी बनिये

एक बार गांधीजी पंचगनी में ठहरे हुए थे। जयपुर के महाराजा वहां आए। एक दिन टहलने के समय वह भी साथ हो लिये। सरोजिनी नायडू ने गांधीजी के साथ उनका परिचय कराते हुए कहा, "हाल ही में महाराजा ने सर मिर्जा इस्माइल के समान एक उदार विचार वाले मुत्सद्दी को अपनी रियासत का दीवान बनाया है।"

गांधीजी ने उत्तर दिया, "यह तो अच्छी बात है, लेकिन अपने को राज्य का मालिक समझकर नहीं, बल्कि ट्रस्टी समझ कर राज्य चलाइये।"

इसी प्रकार बात करते हुए वह आगे बढ़ गये। शान्ति-

कुमार और डा० सुशीला नैयर पीछे रह गये। तभी धीमे स्वर में सुशीलाबहन ने शान्तिकुमार से पूछा, "आप रसोई में क्या-क्या बनाना जानते हैं?"

शान्तिकुमार ने उत्तर दिया, "रोटी बेलना छोड़कर सभी कुछ जानता हूं।"

एकाएक जयपुर के महाराजा से बात करते हुए गांधीजी पीछे की ओर मुड़े और बोले, "दक्षिण अफ्रीका में मैं भी रोटी बेलना नहीं जानता था। बाद में मैंने युक्तिपूर्वक एक तरकीब खोज निकाली। जिस तरह बेलना जानता था उसी तरह बेल कर उसे कटोरे की कोर से दबा देता था और इस तरह रोटी गोल बन जाती थी।"

: ३६ :

हरेक से सीखने की शक्ति रख

आग़ाखां महल में जब गांधीजी घूमने के लिए निकलते थे तो डा० सुशीला नैयर भी उनके साथ रहती थीं। अक्सर वह अपने हाथ में कैंची रखतीं। गांधीजी का आदेश था कि फूल कैंची से ही काटने चाहिए। उन्हें मरोड़ कर तोड़ने में हिंसा और जंगलीपन है। इसीलिए वह कैंची अपने पास रखती थीं। लेकिन कई बार ऐसा होता कि वह उससे हाथ के नाखून भी काटने लगतीं। एक दिन गांधीजी बोले, "यह तो व्यर्थ की हरकत है या तुझे सचमुच ही नाखून काटने की जरूरत है?"

सुशीला नैयर ने उत्तर दिया, "जरूरत तो नहीं है।"

गांधीजी बोले, "तो इसको मैं सहन नहीं करूंगा।"

सुशीला नैयर ने नाखून काटना बंद कर दिया, लेकिन वह तो उनका स्वभाव बन चुका था। कुछ देर बाद वह फिर यंत्रवत नाखून काटने लगीं। तुरन्त याद आया कि गांधीजी ने मना किया है। वह रुक गईं, लेकिन गांधीजी तो देख चुके थे। बोले, "मेरी आंख बहुत-सी चीजें देख लेती हैं। मगर मैं हमेशा टोकता नहीं हूं। अगर मैं ऐसा करूं तो तेरा और मेरा दोनों का खात्मा हो जायगा।"

सुशीला नैयर ने उत्तर दिया, "आपने आज जिस प्रकार कहा है, वैसे कहें तो घबराहट नहीं होती, मगर जब आप चिढ़ जाते हैं तो मैं परेशान हो उठती हूं। मेरी ग्रहण-शक्ति कुंठित हो जाती है। गुस्से में मैं कुछ सीख नहीं सकती। मैं हर किसी से भी नहीं सीख सकती।"

गांधीजी बोले, "यह तो बच्चों की-सी बात हुई। उन्हें रिझाकर सिखाना होता है। तू कबतक बच्ची बनी रहेगी? कान पकड़कर तुझे क्यों नहीं बताया जा सकता? अगर तू इस चीज को अपना गुण मानती है तो यह तेरी भूल है। मैं चाहता हूं कि हरेक से सीखने की शक्ति रख। दत्तात्रेय के चौबीस गुरु थे। उन्होंने पवन, पानी, वृक्ष आदि हरेक गुरु से कुछ-न-कुछ सीख लिया था।"

: ३७ :

सब मुझसे पूछा जायगा, सीखा न जायगा

एक बार की बात है। गांधीजी बैठे थे कि मीराबहन साग-भाजी की डलिया लेकर आ पहुंचीं। ताजी साग-भाजी किसी फ़ार्म से आई थी। जैसे ही डलिया उनके सामने रखी गई, उनकी त्यौरी चढ़ गई। बोले, "यह क्या है ?"

मीराबहन ने उत्तर दिया, "देखकर बता दीजिए, क्या बनेगा ?"

गांधीजी बोले, "सब मुझसे पूछा जायगा, सीखा न जायगा ? वक्त फालतू है मेरे पास ?"

यह कह रहे थे, पर साथ ही टोकरी को टटोल भी रहे थे। पालक का पत्ता उठाया, उसे बीच में से मोड़ा। हल्की-सी चटख के साथ वह टूट गया। दूसरा उठाया। उसे भी मोड़ा। फ़िर बोले, "ऐसे जो टूट जाय, वह ठीक है। जो मुड़ जाय उसे रहने देना। इतना तुम्हें जानना चाहिए। इसकी यही पहचान है और योंही मेरे पास न आ धमका करो।"

मीराबहन पसीना-पसीना हो गईं, लेकिन वह कुछ कह न सकीं, क्योंकि सुनने वाला सुनने को तैयार नहीं था। वह चुप-चाप चली गईं।

तुमने अपराध किया है

जिस समय हरिजन कार्य के लिए गांधीजी उड़ीसा के कुछ भागों का दौरा कर रहे थे, उस समय उनकी टोली के साथ लगभग १८ वर्ष की उम्र का एक जर्मन युवक भी था। गांधीजी ने उसे अपने साथ चलने की इजाजत दे रखी थी। वह अपने जीवन-मार्ग के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करने के हरेक इच्छुक को ऐसी आज्ञा दे देते थे। यह युवक स्वयंसेवक का काम करता था और प्रायः सभी के लिए उपयोगी साबित हो रहा था। समय-समय पर वह लम्बे-लम्बे पत्र और लेख आदि जर्मनी भी भेजा करता था।

उस यात्रा के दौरान गांधीजी ने यह संकल्प किया था कि वह या उनके दल का कोई व्यक्ति राजनैतिक भाषण नहीं देगा। संयोग से एक स्थान पर काफी दिन रुकना पड़ा। यहां उस जर्मन युवक ने स्थानीय विद्यार्थियों की एक बड़ी सभा में भाषण दिया। इस भाषण में उसने भारत में ब्रिटिश शासन-प्रणाली के भीतर की बुराइयों और सुनी हुई दमन की अनेक कहानियों का वर्णन किया। अगले ही दिन उस जिले के ब्रिटिश अधिकारी ने एक पत्र लिख कर उस युवक को चेतावनी दी कि यदि भविष्य में वह इस प्रकार की किसी सभा में भाग लेगा तो उसे वह प्रान्त छोड़कर जाना पड़ेगा।

यह पत्र पाकर वह युवक बहुत प्रसन्न हुआ और उसे लेकर

गांधीजी के पास पहुंचा। उसे देखते ही गांधीजी बहुत क्रुद्ध हुए और उस युवक से बोले, "तुमने अपराध किया है। मेरा संकल्प तुम्हें मालूम है। फिर भी तुम मेरी ही टोली में से एक होकर ऐसी बात कर बैठे!"

उन्होंने उस युवक को आदेश दिया कि वह उस अफसर को पत्र लिखकर क्षमा याचना करे और पत्र डाक में डालने से पूर्व उन्हें दिखा ले। लेकिन उस युवक को उस बात का तनिक भी दुःख नहीं था। बड़े गर्व के साथ उसने तर्क उपस्थित किया, "सभा में मैं बोला था, आप नहीं। मैंने अपने भाषण में जो कुछ कहा, वह सही है।"

गांधीजी ने उत्तर दिया, "यह सब सही हो सकता है, लेकिन इस बात का वह अफसर, सिवा इसके कि हमारे द्वारा विश्वास भंग किया गया है, और क्या अर्थ लगा सकता है? यदि तुम पश्चात्ताप-पूर्ण पत्र लिखकर क्षमा-याचना नहीं करना चाहते हो तो तुम्हें तुरन्त हमारी टोली से अलग हो जाना चाहिए।"

इसके बाद उन्होंने स्वयं घटना के अनुरूप एक पत्र तैयार कर दिया। लेकिन वह युवक भी कम हठी नहीं था। उसने उस पत्र पर हस्ताक्षर करने से इंकार कर दिया। आखिर गांधीजी ने उसे उस पत्र के साथ अगाथा हेरिसन के पास भेज दिया। कई घंटे तक समझाने के बाद ही वह युवक उस पत्र पर हस्ताक्षर कर सका। उसे गांधीजी के साथ रहना जो था।

: ३९ :

मैं इसे तबतक नहीं देख सकता

चम्पारन में नील बागान के स्वामियों के विरुद्ध किसानों की शिकायतों की गांधीजी बड़ी तत्परता से जांच कर रहे थे। उस जांच ने जैसे बिहार में नया जीवन फूंक दिया था। बहुत से सरकारी नौकर भी ऐसा सोचने लगे थे कि गांधीजी की सहायता करना उनका कर्त्तव्य है। उनमें से कुछ ऐसे भी थे, जो सरकारी गुप्त दस्तावेज तक उनके साथियों के पास भेज देते थे। स्वाभाविक रूप से वह दस्तावेज उनके काम की दृष्टि से बड़े कीमती होते थे।

इसी प्रकार का एक दस्तावेज एक बार उनके हाथ लगा। वह उन्होंने गांधीजी को ले जाकर दे दिया। लेकिन गांधीजी ने उसे खोलने से इंकार कर दिया। बोले, "मैं इसे तबतक नहीं देख सकता जबतक मुझे यह विश्वास नहीं दिला दिया जाता कि वह वैध उपायों से प्राप्त किया गया है।"

: ४० :

मुझपर अपनी डाक्टरी का प्रयोग करना चाहते हैं

गोलमेज परिषद् के अवसर पर अपने लंदन-प्रवास में गांधीजी वहां की 'सोसाइटी आफ फ्रेंड्स' की प्रार्थना सभा में

गये। उस सभा में क्वेकर्स और दूसरे लोग बड़ी संख्या में उप-स्थित थे। वे प्रार्थना में एकाग्रचित्त हो ही रहे थे कि इतने में गांधीजी को खांसी का जबर्दस्त दौरा पड़ा। सभी लोगों को बड़ी बेचैनी हुई, लेकिन उस समय प्रभु से प्रार्थना करने के अतिरिक्त वे और कुछ भी कर सकने में असमर्थ थे। कुछ देर बाद गांधीजी स्वयं स्वस्थ हो गये और शेष समय प्रार्थना में बीता।

वहां से वह अपने दफ्तर लौट गये। उस समय डा० एस० के० दत्त ने होरेस अलैक्जेन्डर से कहा, "गांधीजी को बुरी तरह से सर्दी हो गई है। उसमें जरा भी सुधार नहीं दीखता। मेरे विचार से वह किसी डाक्टर की मार्फत अपने स्वास्थ्य की जांच करावें या कम-से-कम स्वयं कोई उचित उपचार कर अपने काम का बोझ अवश्य हलका कर दें।"

होरेस अलैक्जेन्डर बोले, "आपकी बात से पूरी तरह से सहमत हूं, किन्तु चूंकि आप डाक्टर हैं, इसलिए आप ही उन्हें मनावें।"

वे दोनों गांधीजी के पास गये। डाक्टर महोदय ने बड़ी गम्भीरतापूर्वक उनकी खांसी के संबंध में चर्चा आरम्भ की। सहसा गांधीजी की विनोदवृत्ति जाग्रत हो आई और उन्होंने हँसकर डा० महोदय को टोक दिया। उनका मजाक उड़ाते हुए उन्होंने पूछा, "क्या आप मुझ पर अपनी डाक्टरी का प्रयोग करना चाहते हैं? बिलकुल बेकार। मेरी खांसी फ्रेंड्स हाउस की प्रार्थना सभा में ही गायब हो गई थी।"

सचमुच इतना तो सही ही है कि वह प्रार्थना-सभा से विश्वस्त होकर लौटे थे।

सहयोगियों से कुछ नहीं छिपाया जा सकता

जिस समय गांधीजी ने चम्पारन में जांच का काम आरम्भ किया तो नील बागान के स्वामियों में स्वाभाविक रूप से बड़ी खलबली मच गई। वे उनके खिलाफ सरकार के पास झूठ-सच खबरें भेजने लगे। एक अंग्रेज मजिस्ट्रेट गांधीजी के साथ उनके सिद्धान्तों को लेकर बड़े प्रेम के साथ विचार-विनिमय किया करता था। वह भी उनके विरुद्ध सरकार के पास सनसनीखेज समाचार भेजने लगा। अपनी एक रिपोर्ट में उसने लिखा कि गांधीजी की उपस्थिति के कारण यहां का सारा वातावरण कानून के प्रति अवज्ञा की वृत्ति से भर गया है। प्रान्त के कुछ भागों में ब्रिटिश शासन का लोप हो गया है। जनता गांधीजी को एक ऐसे व्यक्ति के रूप में देखने लगी है, जिनके पास सरकार के विरुद्ध शिकायत की जा सके।

उसने इस रिपोर्ट की एक प्रतिलिपि गांधीजी के पास भी भेजी और उन्हें सूचित किया कि वह उनकी सम्मति के साथ ही सरकार के पास भेजी जायगी। उसने यह भी लिखा कि गांधीजी इस पत्र को गुप्त समझें।

लेकिन गांधीजी तो अपने साथियों से कोई बात कभी नहीं छिपाते थे। उन्होंने वह पत्र भी सभी को दिखा दिया और मजिस्ट्रेट को लिख दिया कि वह 'गुप्त' का यही अर्थ लगाते हैं कि

उस पत्र को प्रकाशित न किया जाय। वह अपने सहयोगियों से कुछ भी छिपा कर नहीं रख सकते। उनकी सलाह और सहायता के बिना कुछ भी कर सकना उनके लिए असम्भव है।

उनके सहयोगियों को ऐसा लिखना अच्छा नहीं लगा। उन्हें डर था कि यदि मजिस्ट्रेट ने गांधीजी को ऐसी सूचनाएं देना बन्द कर दिया तो उन्हें स्थानीय अधिकारियों के बीच चलने वाली बातचीत का कुछ भी पता नहीं लगेगा। इसलिए उन्होंने गांधीजी से कहा, "हम इन बातों को जानना नहीं चाहते। आप इन पर विचार करके जिस निर्णय पर पहुंचेंगे उसी में संतोष मान लेंगे।"

गांधीजी बोले, "आप जब सबकुछ पढ़ चुके हैं तो मजिस्ट्रेट को इस गलतफहमी में रखना कि 'किसी ने उसे नहीं देखा' अनुचित है।"

: ४२ :

आज ढाले गये आंसुओं से कुछ सांत्वना मिली

चम्पारन, फिर खेड़ा सत्याग्रह, उसके बाद सैन्य भर्ती के सिलसिले में गांधीजी निरन्तर बहुत व्यस्त रहे। परिणाम यह हुआ कि वह बीमार पड़ गये। उस समय वह अहमदाबाद में थे। शहर के एक बड़े मकान में वह टिके हुए थे, लेकिन वहां उन्हें बिलकुल चैन नहीं पड़ रहा था। वह बराबर कह रहे थे कि उन्हें

साबरमती आश्रम ले जाया जाय, लेकिन वहां तो अभी इने-गिने कमरे ही तैयार हो पाये थे। यद्यपि वह किसी भी प्रकार की औषधि का सेवन नहीं करते थे, फिर भी अन्य साधनों की सुलभता के कारण उनका शहर में रहना सुविधाजनक था। इसलिए उनके मित्र उन्हें यही सलाह दे रहे थे।

लेकिन एक दिन दोपहर को वह अपनी बात पर अड़ गये। उन्हें तेज बुखार चढ़ा हुआ था, पर वह किसीकी भी नहीं सुन रहे थे। इसलिए उन्हें आश्रम ले जाना पड़ा। उन दिनों बाबू राजेन्द्र प्रसाद उन्हें देखने के लिए आए हुए थे। आश्रम पहुंचने के दूसरे दिन ही उन्हें वापस लौटना था। विदा लेने के लिए वह गांधीजी के पास गये। कई क्षण गांधीजी मौन रहे। फिर बोले, "बुरी तरह ज्वरग्रस्त होते हुए भी आश्रम आने की बात पर मैं केवल इसीलिए अड़ा रहा हूं कि उस महल में मुझे बिलकुल चैन नहीं पड़ रहा था। मैंने कई काम उठाये, किन्तु एक भी अपने मन के माफिक पूरा नहीं कर सका। इतना बड़ा महल मेरे अनुरूप कैसे हो सकता है? अहमदाबाद के मिल-मजदूरों में मैंने काम शुरू किया, लेकिन वह थोड़ा आगे बढ़ ही पाया था कि इसी बीच एक-दूसरे काम में हाथ डालना पड़ा। फिर आश्रम चलाने का विचार किया कि चम्पारन से बुलावा आ गया। सोचता था कि वहां का काम जल्दी खत्म हो जाय। आश्रम के उद्घाटन के लिए ठीक समय पर लौट आऊंगा, किन्तु वहां कई महीने रुकना पड़ा, जिससे यह इच्छा भी पूरी नहीं हुई। चम्पारन की रैयत को राहत दिलाने में कुछ कामयाबी तो जरूरत मिली, लेकिन वह नाकाफी थी। बीच ही में खेड़ा जाना पड़ा। फिर

रंगरूट-भर्ती के काम में हाथ डालना पड़ा और अब तो बीमार ही पड़ गया हूं। अब कोई नया काम कहां तक उठा सकूंगा, इसमें भी मुझे संदेह है। सारी उम्र नित-नये-नये काम उठाने और उन्हें अधूरे छोड़ देने में बीती और अब कूच करने का वक्त आ गया है, किन्तु यदि ईश्वर की यही इच्छा है तो निरुपाय हूं।"

इतना कह कर वह एक बच्चे की भांति रोने लगे। उस समय जो व्यक्ति वहां उपस्थित थे वे इतने किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो उठे कि उनके मुंह से संवेदना का एक शब्द भी नहीं फूटा। लेकिन शीघ्र ही गांधीजी स्वयं शान्त हो गये और बोले, "इतने दिन मेरा दम घुटता रहा, लेकिन आज ढाले गये इन आंसुओं से कुछ सांत्वना मिली।"

उसके बाद वह स्वस्थ होकर सहज भाव से दूसरी बातों की चर्चा करने लगे।

: ४३ :

इस पेंसिल जैसा बीच का

गांधीजी से मिलने के लिए बहुधा विदेशी सम्वाददाता आया करते थे। एक बार सेवाग्राम में एक अमरीकी सम्वाददाता दोपहर के बाद उनसे भेंट करने के लिए आया। वह उसे बुलाने ही वाले थे कि खेतों के भीतर से दौड़ता हुआ एक व्यक्ति वहां आया और बोला, "आर्यनायकमजी का लड़का मृत्युशैया पर है।"

सभी व्यक्ति ठगे-से उस आदमी को देखते रह गये। अभी आध घण्टा पहले तो वह बालक बड़े मज़े से यहां खेल रहा था। इसीलिए किसी को भी इस समाचार पर भरोसा नहीं हुआ। परन्तु गांधीजी तुरन्त दौड़ते हुए खेतों के उस पार जा पहुंचे और बच्चे की मां को सांत्वना देने लगे। बच्चा संज्ञाहीन था, जैसे गहरी निद्रा में सोया हो और वह निद्रा कभी टूटने वाली न हो। वह बच्चा बोतल भर कुनेन की मीठी गोलियां खा गया था और उसे जहर चढ़ गया था। सभी व्यक्ति शोक से विमूढ़-से हो रहे थे। गांधीजी समझ गये कि खेल खत्म हो चुका है। वह वापस लौट आए। वह उस अमरीकी सम्वाददाता से प्रतीक्षा करने को कह गये थे। लौटकर उन्होंने उसे बुला भेजा और सहजभाव से उसके प्रश्नों के उत्तर देने लगे। इतना ही नहीं, उस शोकाकुल वातावरण में वह हंसना भी नहीं भूले। अंत में उस संवाददाता ने उनसे पूछा, "आपका स्वास्थ्य कैसा है ?"

गांधीजी के हाथ में एक पेंसिल थी, जिस पर अंग्रेजी में 'मिडलिंग' शब्द अंकित था। उसी की ओर इशारा करते हुए वह तुरन्त बोले, "इस पेंसिल जैसा बीच का।"

कस्तूरबा ट्रस्ट का कार्यालय ऐसे महल में शोभा नहीं देता

श्री शान्तिकुमार बम्बई-स्थित अपना सिंधिया हाऊस गांधीजी को दिखाने के लिए बहुत उत्सुक थे। जब कस्तूरबा ट्रस्ट का कार्यालय सिंधिया हाउस में था तब एक दिन वहां ट्रस्ट की बैठक इसी उद्देश्य से बुलाई गई। गांधीजी उन दिनों बंबई में बिरला हाउस में ठहरे हुए थे। कार्यक्रम बहुत ही निजी और गुप्त रखा गया था, फिर भी गांधीजी के आगमन के समय आसपास के कार्यालयों के बहुत से लोग वहां इकट्ठे हो गये। जिस कमरे में बैठक हो रही थी वह वातानुकूलित था। गांधीजी को ठण्ड लगने लगी, यहां तक कि उन्हें शाल ओढ़नी पड़ी।

बैठक के बाद वह ऊपर की मंजिल पर कस्तूरबा ट्रस्ट का कार्यालय देखने के लिए गये। सबकुछ देखने के बाद उन्होंने ठक्करबापा से कहा, "कस्तूरबा ट्रस्ट का कार्यालय ऐसे महल में शोभा नहीं देता। इसे खाली करो और सेवाग्राम चले जाओ।"

छोटी-छोटी बातों से उद्विग्न क्यों होना चाहिए?

आग़ाखां महल में महादेवभाई की मृत्यु के बाद गांधीजी प्रतिदिन संध्या के समय समाधि-स्थल पर जाया करते थे। समाधि को सजाने के लिए डा० सुशीला नैयर, फूल ले जाती थीं। एक दिन ऐसा हुआ कि वह फूल इकट्ठे कर रही थीं तो गांधीजी समाधि के लिए चल पड़े। सुशीलाबहन ने उन्हें जाते नहीं देखा। गांधीजी को समाधि पर पहुंच कर थोड़ी देर उनकी राह देखनी पड़ी। मीराबहन को यह सब अच्छा नहीं लगा। वह नाराज हो उठीं और सुशीलाबहन से बोलीं, "क्यों इतने फूल लाती हो? बापू का भी समय जाता है।"

सुशीलाबहन जैसे बेचैन हो गईं। उन्हें भी क्रोध आ गया। बोल उठीं, "मैं अब फूल इकट्ठे नहीं किया करूंगी।"

गांधीजी सबकुछ देख रहे थे और सुन रहे थे, परन्तु उस समय वह कुछ नहीं बोले। दूसरे दिन सवेरे जब वह समाधि-स्थान से वापस लौट रहे थे तो एकाएक बातों का प्रसंग बदलते हुए उन्होंने सुशीलाबहन से कहा, "मैं तेरे साथ मीराबहन की बात करना चाहता हूं। कल फूलों की बात पर तू इतनी घबरा क्यों गई थी? यहां तक कहने लगी कि मैं अब फूल इकट्ठे नहीं किया करूंगी। ऐसा क्यों? जो हमारा धर्म है, उससे क्यों चूकें, भले ही कोई कुछ भी कहे।"

सुशीलाबहन ने उत्तर दिया, "इसमें धर्म की बात नहीं है। फूल ले जाकर हम मरने वाले की तो सेवा करते नहीं। अपने सन्तोष के लिए ही ले जाते हैं। मीराबहन नाराज हुईं तो मैंने सोचा, मैं अब नहीं लाऊंगी।"

गांधीजी बोले, "हां, किन्तु यदि फूल चढ़ाकर हम कुछ प्रेरणा लेते हैं, हमारी निष्ठा को कुछ शक्ति मिलती है तो वह ठीक है। अगर ऐसा नहीं है तो फिजूल है, लेकिन मैं तो यह कहना चाहता हूं कि छोटी-छोटी बातों से उद्विग्न क्यों होना चाहिए? इतनी जिज्ञासा भी क्यों रखनी चाहिए कि हमारे बारे में किसी ने क्या कहा था? हम उसी हद तक जानने की इच्छा रखें, जहां तक हमारे आत्म-सुधार के लिए आवश्यक है।"

: ४६ :

मेरे लिए आदर प्रकट करने का यह गलत तरीका है

श्री गणेश वासुदेव मावलंकर, जो बाद में स्वतन्त्र भारत की लोकसभा के अध्यक्ष हुए, सत्याग्रह के प्रारम्भिक दिनों में गांधीजी के असहयोग प्रस्ताव से पूर्णतया सहमत नहीं थे। इस-लिए जब कलकत्ता-अधिवेशन से लौटकर श्री वल्लभभाई पटेल ने यह प्रश्न अहमदाबाद म्युनिसिपेलिटी में उपस्थित किया तो वह उलझन में पड़ गये। दो शिक्षकों ने नोटिस दिया था। अगर

म्युनिसिपेलिटी असहयोग नहीं करती तो वह इस्तीफा दे देंगे। इस पर वल्लभभाई पटेल ने प्रस्ताव पेश किया कि उन दोनों के इस्तीफे मंजूर कर लिये जायं। मावलंकरजी ने इसमें एक संशोधन सुझाया कि इस बारे में मतदाताओं को विश्वास में लेना चाहिए और इसलिए इस प्रस्ताव पर एक महीने बाद विचार करना चाहिए।

सर्वसम्मति से यह संशोधन पास हो गया। अब प्रश्न यह था कि मतदाता मावलंकरजी का साथ नहीं देते तो क्या उन्हें अपने पद से त्यागपत्र दे देना चाहिए? उन्होंने ऐसा ही करने का निश्चय किया। वह असहयोग करने के विरोध में थे। उन्होंने मतदाताओं के लिए असहयोग के अनुकूल और प्रतिकूल दोनों तरह से एक-एक वक्तव्य तैयार किया और हरेक के पास वह वक्तव्य, उत्तर के लिए मतपत्र और पते सहित लिफाफा भेजने का निश्चय किया।

गांधीजी उस समय अहमदाबाद में ही थे। उनको दिखाने के लिए यह वक्तव्य लेकर वह उनके पास गये। गांधीजी ने उसे ध्यानपूर्वक पढ़ा। बोले, "मावलंकर, तुमने यह बहुत लम्बा वक्तव्य लिखा है।"

मावलंकरजी ने उत्तर दिया, "बापू, सब समझ जायं, इसलिए यह जरूरी था और फिर थोड़े से शब्दों में बड़ी बात कह डालने वाली लेखन-कला मुझमें नहीं है।"

बहुत देर तक वह उस प्रश्न को लेकर विचार-विनिमय करते रहे। खुले दिल से बीच-बीच में हँसी-मजाक करते हुए बातें हुईं, लेकिन वह मावलंकरजी को अपनी बात नहीं समझा सके।

मावलंकरजी ने कहा, "बापू, मेरे मन में आपके लिए आदर है। विचारों में ही हमारा मतभेद है, फिर भी ऐसा लगता है कि शायद मेरे विचारों में ही भूल हो। इसलिए मैं आपसे सहमत होने का विचार कर रहा हूं।"

गांधीजी हँस पड़े। बोले, "मेरे लिए आदर है, इसलिए सहमत होना चाहते हो! मेरे लिए आदर प्रकट करने का यह बहुत गलत तरीका है। तुम्हारा कर्त्तव्य है कि तुम जो कुछ ठीक समझते हो उसे खुले मन से व्यक्त करो। मेरी गलती नजर आये तो आलोचना करो, जिससे मैं अपनी भूल समझ सकूं। मेरा आदर व्यक्त करने का तो यही सही तरीका है।"

यह कहते हुए वह बहुत गंभीर हो गये, लेकिन शायद माव-लंकरजी को यह बड़ा कठिन मालूम हो रहा था। गांधीजी ने कहा, "कठिन तो नहीं मालूम होना चाहिए। तुम निर्भय होकर अपना यही वक्तव्य छपवा दो। यह ठीक ही है। मेरे जो विचार दिये हैं, वे भी ठीक हैं।"

यह सुनकर मावलंकरजी को बड़ा सन्तोष हुआ। वह विदा लेकर जाने के लिए उठे, लेकिन दरवाजे तक पहुंचे भी नहीं थे कि गांधीजी ने बुलाकर कहा, "मावलंकर, जरा अपना वक्तव्य दिखाना तो। मुझे लगता है कि मेरे विचारों के विरोध में और तुम्हारे विचारों के अनुकूल कुछ और बातें लिखी जा सकती हैं।"

यह कहते हुए उन्होंने स्वयं अपने हाथ से उस वक्तव्य में अपने ही विरुद्ध दो-तीन बातें और जोड़ दीं।

नहीं, ये तो आम जनता के पैसों के कोयले हैं

सुप्रसिद्ध यरवदा-उपवास के बाद जेल के द्वार हरिजन सेवकों के लिए खोल दिये गए थे। गुजरात और काठियावाड़ में होने वाले हरिजनोद्धार के कार्यक्रम के बारे में बातचीत करने और सलाह लेने के लिए सर्वश्री नानाभाई भट्ट और परीक्षतलाल मजूमदार उसी समय वहां आए। गांधीजी अभी आम के पेड़ के नीचे ही लेटे हुए थे। वहीं वे लोग भी बैठ गये। बातें होने लगीं। जेल के एक अफसर भी पास ही बैठे थे। अंगीठी पर एक कैदी गांधीजी के लिए पानी गर्म कर रहा था।

पानी अच्छी तरह गर्म हो गया। कैदी ने अंगीठी पर से बर्तन उतार कर नीचे रख दिया। कोयले उसी तरह दहकते रहे। गांधीजी ने उस ओर देखा। बातचीत बीच ही में रोककर उन्होंने कैदी से कहा, "अंगीठी बुझा दो, भाई।"

जेल अफसर मुस्कराकर बोले, "कोयले तो सरकारी हैं, आप इतनी फिक्र क्यों कर रहे हैं?"

गांधीजी ने उत्तर दिया, "नहीं, ये तो आम जनता के पैसों के कोयले हैं।"

उनकी आंख चली गई तो मेरी भी गई समझो

श्री विट्ठल लक्ष्मण फड़के (मामा साहब फड़के) की एक आंख में बहुत तकलीफ थी। आपरेशन के लिए उन्हें बम्बई के एक अस्पताल में जाना पड़ा। गांधीजी तभी अस्वस्थता के कारण आगाखां महल से मुक्त हुए थे। इसलिए वह स्वयं नहीं आ सकते थे, लेकिन उनकी ओर से कोई-न-कोई व्यक्ति प्रतिदिन समाचार जानने के लिए जाता था।

पंचगनी से लौटकर जब गांधीजी श्री जिन्ना से मिलने के लिए बम्बई आए तब भी मामासाहब अस्पताल में ही थे। इसी अवधि में 'चर्खा-दिवस' पड़ा। उस दिन बिरला हाउस में उनके मित्रों और प्रशंसकों ने एक छोटा-सा उत्सव मनाया। गांधीजी ने डा० सुशीला नैयर को यह जानने के लिए अस्पताल भेजा कि क्या कुछ देर के लिए मामासाहब भी उस उत्सव में सम्मिलित हो सकते हैं? परन्तु डाक्टर ने आज्ञा देने में अपनी असमर्थता प्रकट की। मामासाहब नहीं जा सके, लेकिन उनके स्थान पर उनकी देखभाल करने वाला एक हरिजन युवक वहां गया।

तीन घंटे बाद जब वह वापस लौटा तो श्री अमृतलाल ठक्कर का एक पत्र लाया था। उसमें लिखा था, "बापू किसी डाक्टर से तुम्हारी आंखों के बारे में बात कर रहे थे। कहते थे अगर उनकी (मामा साहब की) आंख चली गई तो मेरी भी

गई समझो।"

चिट्ठी पढ़ते ही मामासाहब की आंखों से अश्रुधारा बह चली।

: ४६ :

मैं सुबह तक ऐसा ही खड़ा रहूंगा

उस वर्ष स्वर्गीय रायचन्द की जयन्ती अहमदाबाद के प्रेमाभाई हाल में मनाई गई थी। हाल बहुत छोटा था और दर्शक बहुत थे।

सभा का कार्य आरम्भ हुआ, लेकिन शीघ्र ही सब व्यवस्था बिगड़ गई। श्रोताओं के बैठने के लिए जगह तक नहीं थी। नये आने वाले व्यक्ति आगे आने के लिए धक्का-मुक्की करने लगे। फिर तो इतना शोर हुआ कि किसी को कुछ सुनाई देने का प्रश्न ही नहीं था। नेतागण मंच पर से शान्त रहने के लिए प्रार्थना करते-करते थक गये, लेकिन शोर शान्त नहीं हुआ। तब सहसा गांधीजी उठे और जनता का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने के लिए सभापति की मेज पर चढ़ कर खड़े हो गये। उसी क्षण जनता ने गांधीजी को देखा। वे सब चुप हो गये। ऐसा लगा, जैसे कुछ अघटित घट गया हो। देखते-देखते एक घबराहट ने उनको जकड़ लिया। वे स्तब्ध हो उठे और एक सामूहिक स्वर गूंज उठा, "ओह, ओह!"

बात यह थी कि गांधीजी के सिर से आधे इंच की दूरी पर

बिजली का पंखा तीव्र गति से घूम रहा था। सभा को इस प्रकार स्तब्ध देखकर उनकी दृष्टि भी उस ओर गई, लेकिन वह वहां से रंचमात्र भी नहीं हिले। बोले, "सभा का काम चलना ही चाहिए। अगर आप लोग इसी तरह से शोर करते रहे तो मैं सुबह तक ऐसा ही खड़ा रहूंगा, फिर चाहे जो हो जाय।"

स्तब्ध सभा और भी स्तब्ध हो आई, इतनी कि सुई गिरने की आवाज भी सुनाई दे सकती थी।

: ५० :

किसी त्रुटि को बरदाश्त नहीं करूंगा

पूना के प्राकृतिक चिकित्सालय में तीन महीने रहने के बाद गांधीजी सेवाग्राम लौटे तो अपने साथ प्राकृतिक चिकित्सा के विश्वविद्यालय की योजना के रूप में एक कार्य साथ ले आए। डा० दिनशा मेहता उस प्राकृतिक चिकित्सालय के संस्थापक और मालिक थे। वह गांधीजी की तरह ही प्राकृतिक चिकित्सा के अति उत्साही प्रचारक और स्वप्नदृष्टा थे। बरसों पहले उन्होंने अपनी निष्ठावान पत्नी के साथ एक मिशनरी के उत्साह से प्राकृतिक चिकित्सा के कार्य के लिए अपने आपको अर्पण कर कर दिया था। वह प्राकृतिक चिकित्सा का एक विश्वविद्यालय स्थापित करना चाहते थे। गांधीजी भी यही चाहते थे। डा० मेहता ने इसके लिए एक ट्रस्ट का निर्माण किया और गांधीजी ने उसका एक ट्रस्टी बनाना स्वीकार कर लिया।

इस पर सरदार ने गांधीजी से विनोद किया, "छिहत्तर वर्ष की आयु में लोग अपने घर की जिम्मेदारियां भी दूसरों को सौंप कर संन्यास ले लेते हैं और आप दूसरे लोगों की जिम्मेदारियां अपने कंधों पर इस उमर में ओढ़ रहे हैं!"

गांधीजी ने उत्तर दिया, "बचपन से ही प्राकृतिक चिकित्सा मेरा बड़ा प्रिय विषय रहा है। मैं अपनी अनेक प्रकार की प्रवृत्तियों के बीच उस सपने को मूर्त रूप देने का प्रयत्न नहीं कर सका। अब जब ईश्वर ने मुझे यह अवसर दिया है तो मैंने उसे उसका वरदान मानकर स्वीकार कर लिया है।"

प्रस्तावित परिवर्तन की दिशा में उठाए जाने वाले पहले कदम के रूप में उन्होंने यह घोषणा की कि आगामी पहली जनवरी से यह चिकित्सालय गरीबों की सेवा के लिए गरीबों के योग्य पद्धति पर चलाया जायगा, इसमें अमीरों को तभी लिया जायगा, जब वे गरीबों के साथ रह सकें और उनको मिलने वाले स्थान और आराम से अधिक की आशा न रखें। स्वच्छता का माप-दण्ड वैभव और विलासिता से दूर होने पर भी इस तरह की अन्य किसी भी संस्था में प्राप्त माप-दण्ड के समान ऊंचे-से-ऊंचा होगा।

उन्होंने संस्था के कार्यकर्ताओं से पूछा, "क्या आप इस परिवर्तन के अनुकूल बन जाने को तैयार होंगे और क्या गरीबों की इतनी ही लगन और सावधानी के साथ सेवा कर सकेंगे, जितनी लगन और सावधानी से आप अमीर रोगियों की सेवा-शुश्रूषा करते हैं?"

दो दिन बाद उन लोगों ने लिखित रूप में उत्तर दिया और यथासम्भव सब करने का वचन दिया। उन लोगों को प्रस्तावित

परिवर्तनों की अधिक अच्छी कल्पना कराने के लिए उन्होंने चिकित्सालय का निरीक्षण किया। एक-एक कोना बारीकी से देखा और पालिश वाली चीजों पर उंगलियां घिस-घिस कर यह जांचा कि उन पर मैल के दाग तो नहीं हैं, लेकिन मैल के दाग तो उन पर थे। उन्होंने व्यवस्थापकों से कहा, "खैर, इस बार तो मैं आपको छोड़ देता हूं, परन्तु इसका काम संभालने के बाद मैं यहां की स्वच्छता के मामले में किसी त्रुटि को बरदाश्त नहीं करूंगा।"

: ५१ :

तब मेरी क्या हालत होगी

एक बार एक सत्याग्रही डा० पट्टाभि सीतारामय्या से मिलने के लिए आया। वह वर्धा का आश्रम देखना चाहता था। डाक्टर-साहब ने तुरन्त एक पत्र गांधीजी के नाम लिख दिया। स्टेशन पर पहुंचा तो एक और दोस्त जाने के लिए तैयार हो गया। डाक्टरसाहब ने उस पत्र में उसका नाम भी जोड़ दिया। उस पत्र में केवल वर्धा आश्रम देखने की आज्ञा उन्होंने मांगी थी। किन्तु उसके उत्तर में क्रोध से भरा गांधीजी का एक पत्र डाक्टर-साहब को मिला। पढ़कर चकित रह गए। लिखा था :

प्रिय डा० पट्टाभि,

विना किसी पूर्व सूचना और वर्तन-विस्तरों के दो नौजवानों को यहां भेजकर आपने मेरी परिस्थिति बहुत ही विषम बना

दी है। अभी तो स्वयं हमारा ही यहां प्रबंध नहीं हुआ है। क्या किसी भी संस्था पर इस प्रकार से एकदम बोझ डालना उचित है? मानलो कि दूसरे लोग भी आपका अनुकरण करने लगें तब मेरी क्या हालत होगी!

अध्ययन के हेतु यहां आने वालों के लिए अभी किसी भी प्रकार की व्यवस्था नहीं हुई है। सिखाने जैसा यहां कुछ है भी नहीं। मैंने उन मित्रों को रख लिया है और कह दिया है कि जिस तरह हम सब अपने-अपने जिम्मे का काम पूरा कर मेहतर और मजदूरों के काम में भी हाथ बंटाते हैं, उसी तरह आपको भी करना होगा। कृपया दुबारा आप ऐसा कोई कदम न उठावें।

यदि आप उनके घर से या मित्रों से रुपये ले सकते हों, तो उनके प्राथमिक खर्च और वापसी सफर के लिए भेज दें। आज-कल आपका वक्त कैसे कट रहा है?

आपका
मो० क० गांधी

डाक्टरसाहब ने तुरन्त क्षमा मांगते हुए बीस रुपये मनी-आर्डर द्वारा भेज दिये। लिखा कि उन युवकों को आश्रम देखने के लिए भेजा था, रहने के लिए नहीं। मेरे कारण आप उद्विग्न हुए, इसके लिए मुझे बहुत खेद है।

इसके उत्तर में गांधीजी ने डा० पट्टाभि को तसल्ली देने के लिए लिखा कि वे दोनों नवयुवक यहां से तबतक वापस लौटने का नाम लेना नहीं चाहते जबतक कि आश्रम के जीवन से ऊबते नहीं। वे मीराबहन की देखभाल में हैं।

मदद मिले या न मिले...

दक्षिण अफ्रीका में गांधीजी का सत्याग्रह आंदोलन निश्चित रूप से सफलता की ओर बढ़ रहा था। भारत के वायसराय ने दक्षिण अफ्रीका के प्रधानमंत्री जनरल स्मट्स के सामने यह प्रस्ताव रखा कि भारतीयों की मांगों के बारे में एक जांच आयोग नियुक्त किया जाना चाहिए।

जनरल दुविधा में पड़ गये। आयोग नियुक्त नहीं करते हैं तो ब्रिटेन और भारत की नाराजी का डर है। करते हैं तो यूनियन सरकार की शान में बट्टा लगता है; लेकिन दूसरी ओर सहस्रों भारतीयों को जेलों में कबतक रखा जा सकता है?

आखिर उन्होंने आयोग नियुक्त करने का निश्चय किया। जैसे ही नियुक्ति की घोषणा की गई वैसे ही दक्षिण अफ्रीका के भारतीयों ने उसके बहिष्कार का निर्णय कर लिया। उनका कहना था कि उसके संगठन में हिन्दुस्तानियों की राय नहीं ली गई। इतना ही नहीं, उनके हित को दृष्टि में रखने वाले सदस्यों की नियुक्ति भी नहीं की गई।

जैसा कि स्वाभाविक था, इस बहिष्कार से उनके हितैषियों को बहुत आश्चर्य हुआ। भारत सरकार पर और हिन्दुस्तान के राजनैतिक क्षेत्रों में इसका प्रभाव बिलकुल भी अच्छा नहीं होगा, यह सोचकर दीनबन्धु एन्ड्रयूज का मन घुटने लगा, लेकिन जब गांधीजी ने सत्याग्रह की रीति-नीति और हिन्दुस्ता-

नियों के भयंकर अपमान की बात विस्तार से बताई तो वह संतुष्ट हो गये। इतना ही नहीं, ईसाई नव-वर्ष के मंगल-दिवस पर, गांधीजी जो कूच आरम्भ करने वाले थे, वह उसमें शामिल होने के लिए भी तैयार हो गये।

उधर जैसा कि स्वाभाविक था, समूचा वातावरण डांवाडोल हो उठा। इंग्लैण्ड में लार्ड एम्पथील की कमेटी नाराज हो गई। उन्होंने गांधीजी को तार दिया, "हिन्दुस्तानियों को कमीशन की बात स्वीकार कर लेनी चाहिए। विपरीत निश्चय के लिए हमें बड़ा अफसोस है।"

हिन्दुस्तान से श्री गोखले का तार आया, "कमीशन को न मानकर नव वर्ष के दिन से कूच करने के समाचारों से मुझे बड़ा दुख हुआ। आपके इस निश्चय से मेरी और वायसराय लार्ड हार्डिंज की स्थिति बड़ी विषम हो गई है। यह विश्वास रख कर कि यूनियन सरकार आपके प्रश्नों का निपटारा जरूर करेगी, कमीशन को स्वीकार कर लीजिये। उसके सामने जरूरी सबूत दीजिये और कूच बन्द रखिए।"

श्री गोखले और गांधीजी के क्या सम्बन्ध थे, यह सभी जानते हैं। लेकिन गांधीजी ने बड़ी दृढ़ता के साथ उनको जवाब दिया, "आपके दुख को मैं समझ सकता हूं। बड़ी-से-बड़ी बात को छोड़कर आपकी सलाह का आदर करने की मेरी इच्छा रहती है। लार्ड हार्डिंज ने जो सहायता दी है, वह अमूल्य है। मैं भी चाहता हूं कि वह सहायता आखिर तक मिलती रहे, परन्तु मैं चाहता हूं कि आप हमारी स्थिति को समझें। इसमें हजारों आदमियों की प्रतिज्ञा का सवाल है। प्रतिज्ञा शुद्ध है।

सारी लड़ाई की रचना इस प्रतिज्ञा पर हुई है। अगर प्रतिज्ञा का वन्धन न होता तो हममें से वहुत से लोग आजतक गिर गये होते। हजारों की प्रतिज्ञा पर एकवार पानी फिर जाय तो फिर नीति-वन्धन जैसी कोई चीज ही नहीं रहती। प्रतिज्ञा लेते समय लोगों ने पूरा विचार कर लिया था। उसमें किसी प्रकार की अनीति तो है ही नहीं। वहिष्कार की प्रतिज्ञा लेने का कौम को अधिकार है। मैं चाहता हूं कि आप भी ऐसी सलाह दें कि इस प्रकार की प्रतिज्ञा किसी भी व्यक्ति के लिए न टूटे और हर तरह का खतरा उठाकर भी उसका पालन होना चाहिए। यह तार लार्ड हार्डिंज को वता दीजिए। मैं चाहता हूं कि स्थिति विषम न हो। हमने लड़ाई ईश्वर को साक्षी रखकर, उसी की सहायता पर आधार रखकर, आरम्भ की है। इसमें बुजुर्गों की और वड़े आदमियों की मदद हम माँगते हैं और चाहते हैं। वह मिले तो हमें खुशी होती है, परन्तु मदद मिले या न मिले, मेरी नम्र राय यह है कि प्रतिज्ञा का बन्धन हरगिज न टूटना चाहिए। उसके पालन में मैं आपका समर्थन और आशीर्वाद चाहता हूं।"

: ५३ :

यह बेगार नहीं तो क्या है ?

दाण्डी कूच के ऐतिहासिक दिनों में प्रवन्धकों ने एक मजदूर की भी व्यवस्था की थी। रात के समय वह गैसवत्ती लेकर

चलता था। एक दिन भाटगाँव में भाषण करते हुए बड़े मार्मिक शब्दों में गांधीजी ने उसकी चर्चा की। वह बोले :

"मैंने देखा है कि आप लोगों ने रात के सफर के लिए एक भारी गैस की बत्ती का प्रबन्ध किया है और उसे एक गरीब मजदूर अपने सिर पर एक तिपाई के ऊपर रखकर चलता है। यह एक लज्जाजनक दृश्य है। उस आदमी को तेज चलने के लिए विवश किया जा रहा है। रात मैं उस दृश्य को सहन नहीं कर सका। इसलिए मैंने चाल तेज की और मैं सारे समुदाय से आगे निकल गया, पर यह सब बेकार हो गया। उस बेचारे को मेरे पीछे-पीछे दौड़ने को मजबूर किया गया। मेरी लज्जा की हद हो गई। अगर वह बोझा ले जाना ही है तो मैं यह देखना पसन्द करता कि हममें से ही कोई उसे ले चलता। तब हम तिपाई और बत्ती दोनोंको ही चलता बता देते। कोई मजदूर ऐसा बोझा अपने सिर पर नहीं ले जायगा। हम बेगार का विरोध करते हैं और वह ठीक ही है, परन्तु यह बेगार नहीं तो और क़्या है? अगर हम जल्दी ही अपने तौर-तरीके नहीं सुधार लेंगे तो हमने लोगों के सामने स्वराज्य की जो तस्वीर रखी है, वैसा स्वराज्य सम्भव नहीं होगा।"

तुम्हारा दुःख तुम्हारे कथन से कहीं अधिक जान पड़ता है

चम्पारन के किसानों पर गोरे निलहों का अत्याचार पराकाष्ठा पर पहुंच चुका था। बहू-बेटियों की इज्जत दिन-दहाड़े लूट ली जाती थी। घर में आग लगा देना साधारण बात थी। बेचारे किसान त्रस्त हो उठे थे। उनकी यह दर्द-भरी कहानी कांग्रेस के नेताओं तक पहुँचाने के लिए कुछ स्थानीय कार्यकर्त्ता लखनऊ पहुंचे। उस वर्ष कांग्रेस का अधिवेशन लखनऊ में हो रहा था।

दिनभर के काम के पश्चात श्री रामदयाल प्रसाद शाह और श्री राजकुमार शुक्ल अधिवेशन की झांकी लेने के लिए निकले। देखा कि लोकमान्य बालगंगाधर तिलक चले आ रहे हैं। उन्हें मार्ग में ही रोककर उन लोगों ने अपनी व्यथा उनके सामने प्रकट की। लोकमान्य ने कहा कि वह स्वराज्य के लिए चिन्तित हैं। चम्पारन के लिए तत्काल ही शायद कुछ न कर सकेंगे।

वे लोग और आगे बढ़े तो महामना पंडित मदनमोहन मालवीयजी आते हुए दिखाई दिये। उनसे भी उन्होंने अपनी वह दुख-भरी कहानी कह सुनाई। महामना बोले, "मैं काशी विश्वविद्यालय के झंझटों में फंसा हुआ हूं। मेरे पास समय ही नहीं है, लेकिन मैं तुम्हें गांधीजी के पास जाने की सलाह दूंगा,

तुम्हारे काम के लिए वह ही सबसे उपयुक्त व्यक्ति हैं।"

दूसरे दिन वे लोग गांधीजी के डेरे में पहुंचे। वह दातुन कर रहे थे। उसके मुख पर एक अद्भुत शान्ति और गम्भीरता विराजमान थी। बड़ी देर तक वह धैर्यपूर्वक उनकी कहानी सुनते रहे। फिर सहसा गम्भीर होकर उन्होंने व्यथित स्वर में कहा, "तुम लोगों का दुःख तुम्हारे कथन से कहीं अधिक जान पड़ता है। मुझसे क्या चाहते हो ?"

श्री शाह बोले, "इस सम्बन्ध में कांग्रेस-अधिवेशन में एक प्रस्ताव पास करा दीजिए।"

गांधीजी ने उत्तर दिया, "उससे क्या होगा? पहले मैं स्वयं वहां की स्थिति को देखना चाहूंगा। अहिंसात्मक ढंग से दुःखों का सामना करने पर ही उनका अंत हो सकता है। तुम सबको अधिक-से-अधिक संख्या में जेल जाने के लिए तैयार रहना चाहिए।"

कार्यकर्त्ता कुछ भी करने को तैयार थे। उन्होंने आग्रहपूर्वक चम्पारन आने का आमन्त्रण गांधीजी को दिया।

गांधीजी बोले, "अप्रैल में मुझे कलकत्ता जाना है। वहीं आकर आप लोग मिलें।"

श्री राजकुमार शुक्ल कलकत्ता जाकर उनसे मिले। गांधीजी चम्पारन पहुंचे। वहां की स्थिति की स्वयं उन्होंने जांच की। उसके बाद उन्होंने वहां जो किया, उसे सब जानते हैं।

उन्हें हमारी भाषा सीखनी होगी

गांधीजी जब गुजरात में बस गये तो वहाँ जैसे जीवन जाग उठा। राजनैतिक कार्यकर्त्ताओं ने 'गुजरात राजकीय परिषद' की स्थापना की। गांधीजी इसके अध्यक्ष मनोनीत हुए। इसका पहला अधिवेशन हुआ गोधरा में। उसमें गांधीजी गुजराती में ही बोले थे।

उन दिनों सम्राट् के प्रति राजनिष्ठा का प्रस्ताव पास करने की परिपाटी थी, परन्तु जब गांधीजी के सामने वह प्रस्ताव आया तो उन्होंने उसे फाड़ डाला। बोले, "ऐसा प्रस्ताव पास करना बेहूदापन है। जबतक हम बगावत नहीं करते तब-तक हम राजनिष्ठ हैं ही। इस बात की बार-बार घोषणा करने की कोई आवश्यकता नहीं। क्या कोई स्त्री अपने पति के सामने बार-बार पतिव्रता होने की घोषणा करती है? उसने शादी की है। इसका अर्थ है कि वह पतिव्रता है।"

यह सुनकर कार्यकर्त्ता अवाक् रह गये। गांधीजी बोले, "अगर कोई आपसे पूछे कि राजनिष्ठा का वह प्रस्ताव क्या हुआ तो कह देना, मैंने उसे फाड़ दिया है।"

इसी परिषद् में वीरमगांव के बारे में एक प्रस्ताव पास हुआ था। अध्यक्ष होने के नाते गांधीजी को उस प्रस्ताव को वायसराय के पास भेजना था। उन्होंने तुरन्त इस आशय का एक तार लिखवाया। उसके नीचे अपने नाम के बाद लिखा,

'अध्यक्ष, गुजरात राजकीय परिषद्।'

काका कालेलकर यह देखकर बोले, "बेचारा वायसराय इन देशी शब्दों का अर्थ क्या समझेगा ?"

गांधीजी ने उत्तर दिया, "अगर उन्हें यहां राज्य करना है तो हमारी भाषा सीखनी ही होगी या फिर किसी दुभाषिये को अपने पास रखना होगा, जो उन्हें समझाया करे। अपनी गर्ज से ही तो वे राज्य कर रहे हैं न ?"

अन्त में तार वैसा ही गया और उसका जवाब भी ठीक-ठीक मिला।

: ५६ :

कटोरा ऐसा उजला होना चाहिए कि...

आगाखां महल में नजरबन्दी के समय सब लोग सवेरे साढ़े पांच बजे उठते थे और दातुन आदि से निपट कर लगभग छः बजे प्रार्थना करते थे। उसके बाद गांधीजी दो चम्मच शहद, एक नीबू का रस, आठ औंस गर्म पानी में मिलाकर लेते थे। उपवास के बाद कमजोरी होने के कारण थोड़ी देर वह आराम कर लेते थे। मनु उनके बर्तन साफ करती थी। उस समय गांधीजी खाने के लिए जेल का लोहे का कटोरा ही इस्तेमाल करते थे। उनका आदेश था कि उसे ऐसा मांजा जाय, जिससे उसमें मुंह दिखाई दे सके।

वह कहते थे कि दक्षिण अफ्रीका की जेल में मैं कटोरे को

इतना बढ़िया मांजता था कि जेलर और सुपरिन्टेन्डेन्ट दोनों खुश हो जाते थे। वहां नीबू के छिलके जैसी कोई चीज नहीं मिलती थी। रेत और हाथ की ताकत से ही मांजना पड़ता था।

मनु से भी वह ऐसी ही आशा करते थे। यरवदा जेल से काम करने के लिए पच्चीस कैदी जाते थे, लेकिन वह अपना काम स्वयं ही करते थे। किसी दिन वह कटोरा साफ नहीं होता तो बापू मनु को क्षमा नहीं करते थे। कहते, "यह कटोरा ऐसा उजला होना चाहिए कि इसमें मुंह देखकर हजामत बना सकूं।"

: ५७ :

यह अपने आप उड़ जायगी

प्रार्थना समाप्त हो जाने के बाद एक दिन गांधीजी के हाथ के अंगूठे पर एक मधुमक्खी आ बैठी। उन्होंने उसे उड़ाने की तनिक भी चेष्टा नहीं की। वह वहीं बैठी रही और वह उसे ध्यान-पूर्वक ऐसे देखते रहे, जैसे कोई वैज्ञानिक किसी पदार्थ के गुण-दोषों का आविष्कार कर रहा हो। डा० हरिप्रसाद देसाई भी उस समय वहीं पर बैठे हुए थे। वस्तुतः उन दिनों वे सब लोग थोरो, वनियन और रामदास स्वामी की पुस्तकें पढ़कर उन पर चर्चा किया करते थे। मधुमक्खी के प्रति गांधीजी का यह व्यवहार डा० देसाई को बड़ा विचित्र-सा लगा। उन्होंने कहा, "इसे उड़ा दीजिये। बेकार कहीं डंक न मार दे।"

गांधीजी हंस कर बोले, "आप भूलते हैं। अगर मैं इसे अभी उड़ाने की कोशिश करूं तभी यह डंक मारेगी। इसी तरह चुपचाप बैठा रहूं तो अपने आप उड़ जायगी।"

सचमुच दो-चार क्षण बाद वह मधुमक्खी स्वयं ही उड़ गई और गांधीजी खिलखिला कर हंस पड़े।

: ५८ :

कहीं शरीर को अजगर की तरह पड़ा रखकर सहलाया जाता है

जलियांवाला बाग के अमानुषिक हत्याकांड के बाद राष्ट्रीय महासभा ने उसकी जांच के लिए एक समिति बनाई थी। गांधीजी उसके सदस्य थे। अनेक दिनों तक घर-घर घूम कर उन्होंने हजारों व्यक्तियों की गवाहियां इकट्ठी की थीं। उनमें से एक गवाही को भी चुनौती देने का साहस किसीको नहीं हुआ। उस जांच समिति की रिपोर्ट गांधीजी ने ही लिखी थी।

उसके बाद वह साबरमती आश्रम लौट गये। उन्हीं दिनों पंडित सुखलालजी उनसे मिलने के लिए आए। कमरे में जहां गांधीजी बैठे थे वहीं महादेव देसाई भी कुछ काम कर रहे थे। पंडितजी को देखकर गांधीजी खिलखिला पड़े और बोले, "आओ।"

सुखलालजी गांधीजी की ओर मुड़े। गांधीजी बहुत थक गये थ। सुखलालजी ने कहा, "बापूजी, आप तो बहुत थके मालूम

होते हैं। कुछ अधिक परेशान भी लग रहे हैं। ऐसा प्रतीत होता है, पंजाब में द्वार-द्वार भटकने और रिपोर्ट लिखने के कारण आपने बहुत जागरण किया है। अब आप कहीं जाकर एक-दो महीने के लिए आराम क्यों नहीं करते?"

गांधीजी ने तुरन्त उत्तर दिया, "कहीं शरीर को ऐसे अजगर की तरह पड़ा रखकर सहलाया जाता है!"

: ५९ :

ताज के सच्चे हकदार तो ये व्यक्ति हैं

गांधीजी जब दक्षिण अफ्रीका से लौटे तो घूमते-घामते मद्रास गये। वहां उनका बड़ा स्वागत-सत्कार किया गया। उन्हें और कस्तूरबा को एक मान-पत्र भेंट किया। उस मान-पत्र में उनकी बहुत अधिक प्रशंसा की गई थी। उसका उत्तर देते हुए गांधीजी ने कहा, "अध्यक्ष महोदय, इस मान-पत्र में मेरे और मेरी पत्नी के लिए जिस भाषा का प्रयोग किया गया है, यदि हम उसके दसवें हिस्से के भी हकदार हैं तो मैं नहीं जानता कि आप उन लोगों के लिए किस भाषा का प्रयोग करेंगे, जिन्होंने दक्षिण अफ्रीका में अपने पीड़ित देशवासियों के लिए अपने प्राणों की चिन्ता भी नहीं की! नाणप्पन और नारायण स्वामी जैसे सत्रह-अठारह वर्ष के लड़कों को आप किस भाषा में याद करेंगे, जिन्होंने अपनी मातृभूमि की प्रतिष्ठा के लिए निश्चल श्रद्धा के साथ सभी कष्ट

और सभी अपमान सहे ? उस सत्रह वर्ष की प्यारी लड़की वली-अम्मा के बारे में आप कौन-सी भाषा काम में लेना चाहेंगे, जो मैरित्सवर्ग जेल से कंकाल बन कर छूटी थी और उसीके परिणाम-स्वरूप एक महीने के भीतर चल बसी थी ? यह दुर्भाग्य की बात है कि मेरे और मेरी पत्नी के काम के सम्बन्ध में सभी लोग जानते हैं। हमने जो कुछ किया है, उसका आपने बेहद बढ़ा-चढ़ा कर बखान किया है, लेकिन वास्तव में आप जो ताज हमारे सिर पर रखना चाहते हैं उसके सच्चे हकदार ये व्यक्ति हैं।"

: ६० :

प्रार्थना नियत समय पर करनी ही चाहिए

आंध्र प्रदेश में चिकाकोल अपनी महीन खादी के लिए सारे भारत में प्रसिद्ध है। एक बार यात्रा करते-करते गांधीजी जब वहां पहुंचे तो रात हो आई थी। स्थानीय लोगों ने उनके लिए कताई दंगल की व्यवस्था की थी और उस दंगल में अच्छी-अच्छी कत्तिनें भाग लेने आई थीं। गांधीजी खादी प्रचार के लिए ही यह यात्रा कर रहे थे।

उनके दल में काका कालेलकर और महादेव देसाई भी थे। दिन-रात मोटर में यात्रा करते-करते वे थक गये थे। इसलिए उन्होंने इस दंगल में बैठना उचित नहीं समझा और जाकर सो रहे। लेकिन गांधीजी को तो उस दंगल में जाना ही था।

उन्हें कब छुट्टी मिली, वह कब सोए, किसी को कुछ पता नहीं चला। सवेरे चार बजे सब लोग प्रार्थना के लिए उठे तब गांधीजी ने उनसे पूछा, "रात को सोने से पहले क्या तुम लोगों ने प्रार्थना की थी?"

काकासाहब ने उत्तर दिया, "जब आया तो इतना थक गया था कि सो गया। प्रार्थना का स्मरण ही नहीं रहा।"

महादेवभाई बोले, "मैं भी थक गया था, लेकिन आंख लगने से पहले मुझे स्मरण हो आया। तब बिस्तर पर बैठकर ही मैंने प्रार्थना कर ली।"

गांधीजी ने कहा, "मैं तो घण्टा-डेढ़ घण्टा दंगल में बैठा। वहां से लौटा तो इतना थक गया था कि प्रार्थना करना भूल गया। दो ढाई बजे नींद खुली तो याद आया। तब ऐसा आघात लगा कि सारा शरीर कांपने लगा। पसीने से तर हो गया। उठ कर बैठा। खूब पश्चात्ताप किया। जिसकी कृपा से मैं जीता हूं, अपने जीवन की साधना करता हूं, उस भगवान को ही भूल गया! इतनी बड़ी गलती हो गई! मैंने भगवान से क्षमा मांगी, लेकिन तब से नींद नहीं आई। ऐसे ही बैठा हूं।"

प्रार्थना के बाद उन्होंने फिर कहा, "यात्रा में भी शाम की प्रार्थना हमें नियत समय पर करनी चाहिए। सारे दिन का कार्यक्रम पूरा करके सोने से पहले जब अवसर मिलता है तभी हम प्रार्थना करते हैं। यही गलती है। आज से शाम के सात बजे प्रार्थना होगी, हम कहीं भी क्यों न हों।"

उसके बाद सात बजे वह जहां भी होते, बस्ती में, जंगल में, मोटर रोक कर प्रार्थना करते थे।

तुमने तो बड़ा गुनाह किया

एक बार गांधीजी ने बलवन्तसिंह को एक शीशी दी और कहा, "इसके लिए एक डाट चाहिए।"

उस समय आश्रम में एक बढ़ई काम कर रहा था। बलवन्तसिंह ने उसी से शीशी की डाट बना देने के लिए कहा। उसने एक सुन्दर-सी डाट बना दी। गांधीजी ने जब उसे देखा तो बहुत खुश हुए और लगे उसकी प्रशंसा करने। बलवन्तसिंह भांप गये कि गांधीजी यह समझ रहे हैं कि यह डाट मैंने बनाई है, इसलिए वह बोले, "बापूजी, यह डाट मैंने नहीं बनाई है।"

यह सुनकर गांधीजी सहसा गम्भीर हो उठे। बोले, "तो यह डाट तुमने बढ़ई से बनवाई है! मैं तो तुम्हें शाबाशी देना चाहता था, लेकिन तुमने तो बड़ा गुनाह किया। मैंने तो तुम्हें बनाने के लिए कहा था। बेशक, आज खराब बनती, लेकिन एक कला तो आती। औजार पकड़ना सीखते। दुबारा और अच्छी बनाते। तीसरी बार उससे भी अच्छी बनती और इस तरह तुम इस कला में निपुण हो जाते, लेकिन तुम्हें जो काम सौंपा गया था, उसकी जिम्मेदारी तुमने दूसरे पर डाल दी। यह अच्छी बात नहीं है।"

एकता हमारे सिर पर थोपी है

अपने इंग्लैण्ड-प्रवास में गांधीजी 'मैनचेस्टर गार्जियन' के अवसरप्राप्त संपादक, सुप्रसिद्ध पत्रकार, पिचासी वर्ष के स्कॉट से मिलने उनके निवासस्थान पर गये थे। उस समय वह वोगनोर में अपनी बहन के पास रह रहे थे।

उनके साथ गांधीजी की लम्बी बातचीत हुई। गांधीजी तर्क-वितर्क अथवा वाद-विवाद करके उन्हें किसी प्रकार भी तंग नहीं करना चाहते थे। ज्योंही वृद्ध स्कॉट उनका स्वागत करने के लिए आगे आये, गांधीजी ने उनसे कहा, "यह तो केवल तीर्थ-यात्रा है। गलतफहमी और विपरीत प्रचार के विरुद्ध आपके पत्र ने जो अपूर्व काम किया है, मैंने सोचा कि और कुछ नहीं तो केवल कृतज्ञता-प्रदर्शन के लिए ही मुझे आपसे मिलना चाहिए।"

स्कॉट गांधीजी को अपने घर के पिछले भाग के एक कांच के कमरे में ले गये। यह कमरा इस प्रकार बनाया गया था कि चारों ओर से उसमें सूर्य का प्रकाश अच्छी तरह आ सके। बातों-ही-बातों में उन्होंने पूछा, "क्या आप नहीं मानते कि भारत में जो एकता है, वह अंग्रेजी शासन के ही कारण है?"

गांधीजी ने कहा, "हां, यह एकता अंग्रेजी शासन ने हमारे सिर पर थोपी है। नतीजा यह हुआ है कि जैसा कि हम देख रहे हैं, आनबान का प्रसंग आने पर असंख्य विनाशक शक्तियां पैदा हो जाती हैं। मेरी इस बात से मैक्डोनल्ड चिढ़ गये थे, किन्तु

मेरा यह पूर्ण विश्वास है कि यदि परिषद् में भारत के चुने हुए सच्चे प्रतिनिधि होते तो साम्प्रदायिक प्रश्नों का निपटारा होने में कुछ भी कठिनाई न होती।"

और भी बहुत-सी बातें थीं, लेकिन जैसा कि हमने आरम्भ में कहा, उनका उद्देश्य स्कॉट से दलील करना नहीं था। उन्होंने घटनाओं से परिपूर्ण भूतकाल की चर्चा की। 'मिठास और तेजपूर्ण काली आंखोंवाले ग्लेडस्टन और सदैव के लिए इतिहास पर अपनी राजनीतिज्ञता की छाप बिठा देने वाले कैम्पबेल बेनरमेन जैसे व्यक्तियों की और दक्षिण अफ्रीका का विधान बनाते समय उन्होंने जो बड़ा हिस्सा लिया, उसकी याद की और ऐसे वीर पुरुषों के लिए 'आह' भरी। चलते समय बोले, "मुझे आशा है कि मेरे उद्देश्य के प्रति आपकी शुभकामनाएं हैं।"

इस पर वृद्ध स्कॉट ने प्रेमपूर्वक कहा, "हां-हां, अवश्य।"

: ६३ :

यदि मैं बदल गया तो

तिलक स्वराज्य फण्ड के संबंध में गांधीजी भारत का भ्रमण कर रहे थे। घूमते-घूमते वह बम्बई जा पहुंचे। वहां 'पारसी राजनैतिक सभा' ने पारसियों के लिए विशेष रूप से एक सभा आयोजित की। प्रवेश टिकटों से था। इस सभा में सरोजिनी नायडू, लाला लाजपतराय और स्टोक आदि

सुप्रसिद्ध व्यक्ति बोलनेवाले थे। सभापतित्व करनेवाले थे स्वयं गांधीजी। इसलिए सारा भवन समय से पूर्व ही इस प्रकार भर गया कि कहीं तिल रखने लायक़ जगह न रह गई।

गांधीजी के सामने जब वक्ताओं की सूची आई तो उसमें गुजराती के प्रमुख कवि श्री रायचुरा का नाम भी था। सभा के आयोजक श्री भरूचा से गांधीजी ने पूछा, "रायचुरा बोलेंगे या गायंगे ?"

श्री भरूचा ने उत्तर दिया, "गायंगे।"

गांधीजी ने पूछा, "कौनसा गीत गायंगे ?"

श्री भरूचा ने उत्तर दिया, "धन्य भूमि गुजरात मात !"

यह सुनकर गांधीजी बोले, "मैं उन्हें यह गीत नहीं गाने दूंगा।"

श्री भरूचा आसानी से हार माननेवाले नहीं थे। वह श्रोताओं के पास गये और बोले, "गांधीजी नहीं चाहते कि श्री रायचुरा 'धन्य भूमि गुजरात मात' यह गीत गायें।"

यह सुनकर श्रोता बड़े उत्तेजित हुए। वे यह गीत सुनना चाहते थे। उन्होंने कहा, "महात्माजी से कहिए कि यह कोई सार्वजनिक सभा नहीं है। हम यहां टिकट लेकर आये हैं। इस सभा का कार्यक्रम देखकर ही इतने पैसे हमने दिये हैं। श्री रायचुरा के मुंह से उनका गीत 'धन्य भूमि गुजरात मात' अवश्य सुनेंगे।"

परन्तु गांधीजी अडिग थे। उधर श्रोता भी अडिग थे। जब श्री रायचुरा के बोलने का अवसर आया तो श्री भरूचा खड़े हो गये और श्रोताओं को सम्बोधित करते हुए बोले, "गांधीजी

के प्रति मेरे मन में इतनी श्रद्धा है कि मैं उनकी आज्ञा के लिए कैसा भी मूल्य चुकाने के लिए तैयार हूं। लेकिन इस बार आपके आग्रह पर मैं उनकी आज्ञा का उल्लंघन करना चाहूंगा। मैं भाई रायचुरा से निवेदन करता हूं कि वह अपना गीत 'धन्य भूमि गुजरात मात' सुनायें।"

जहां सभापति बैठे थे उसके दूसरे कोने से कवि ने अपना गीत शुरू किया :

"धन्य भूमि गुजरात मात,
तुज भाग्यलेख कंई भव्य दिसे।
सहु साधू नो साचो साधु,
साबरमती जळतीर वसे।"

गांधीजी की जय के तुमुलनाद से सभा-भवन गूंज उठा। पर वह मूर्त्तिवत् शान्त बैठे रहे। अन्त में सभापति पद से भाषण देने की उनकी बारी आई। इस अवसर पर उन्होंने जो कुछ कहा, वह वही कह सकते थे। वह बोले, "आप लोगों ने भाई रायचुरा का गीत सुना। सुनकर आप दीवाने हो उठे। तालियां बजाईं। रूमाल हिलाये। जयनाद भी किया। लेकिन मैं आपसे एक बात कहता हूं। एक व्यक्ति की उपस्थिति में उसका इस तरह गुणगान नहीं करना चाहिए। यह सबसे बड़ी गलती है। आज तुम जिस व्यक्ति की प्रशंसा कर रहे हो वह कल भी वैसा ही रहेगा उसका क्या भरोसा! अगर वह व्यक्ति कल बदल जाय तो ऐसी कविता लिखनेवाले, गानेवाले, उस पर मुग्ध होकर हर्षनाद करने वाले, तालियां बजाने वाले और रूमाल लहराने वाले सबके लिए यह एक बहुत बड़ी लज्जा की बात होगी।"

मैं इसे धोखा मानता हूं

जिस समय गांधीजी दक्षिण अफ्रीका में रंग-भेद के विरुद्ध संघर्ष कर रहे थे उसी समय अचानक कस्तूरबा गांधी अस्वस्थ हो गईं। उन्हें बार-बार रक्तस्राव होने लगा। डाक्टर की सलाह के अनुसार उन्हें आपरेशन कराना पड़ा।

आपरेशन सफल हुआ और दो-तीन दिन बाद ही डाक्टर ने गांधीजी को जोहानिसबर्ग जाने की अनुमति दे दी। वह चले गये, लेकिन कुछ ही दिन बाद उन्हें सूचना मिली कि बा की तबियत सुधर नहीं रही है। वह उठ-बैठ नहीं सकतीं। एक बार तो बेहोश भी हो गई थीं।

ऐसी गम्भीर स्थिति देखकर डाक्टर ने अनुभव किया कि बा को मांस का शोरबा अत्यन्त आवश्यक है। उन्होंने तुरन्त जोहानिसबर्ग गांधीजी को फोन किया और बा को मांस का शोरबा देने की अनुमति चाही।

गांधीजी ने उत्तर दिया, "मैं ऐसी इजाजत नहीं दे सकता, किन्तु बा स्वतन्त्र हैं। उनसे पूछ देखिये, वह लेना चाहें तो अवश्य दीजिये।"

डाक्टर बोले, "बीमार से ऐसी बातें पूछना मुझे पसन्द नहीं है। इसलिए आपका यहां आना बहुत जरूरी है। अगर आप मुझे मांस का शोरबा देने की अनुमति नहीं देते तो मैं आपकी पत्नी के लिए जिम्मेदार नहीं रहूंगा।"

गांधीजी डरबन पहुंचे। डाक्टर ने उन्हें बताया, "मैंने तो रोगी को शोरबा पिलाकर ही टेलीफोन किया था।"

गांधीजी बहुत दुखी हुए, लेकिन शान्त बने रहे। डाक्टर उनके मित्र थे। उन्होंने इतना ही कहा, "डाक्टर, मैं इसे धोखा मानता हूं।"

डाक्टर ने दृढ़ता से उत्तर दिया, "बीमार का इलाज करते समय हम ऐसी बातों की चिन्ता नहीं करते। हमारा धर्म तो किसी भी तरह रोगी को बचाना है।"

गांधीजी ने उसी तरह शान्त स्वर में कहा, "डाक्टर-साहब, आप स्पष्ट कहिए, आप क्या चाहते हैं? मैं अपनी पत्नी को उनकी इच्छा के बिना मांस नहीं खिलाने दूंगा। ऐसा करने से उसकी मृत्यु भी हो जाय तो मैं उसे सहन करने को तैयार हूं।"

डाक्टर बोले, "आपका यह दर्शन मेरे घर में नहीं चल सकता। जबतक यहां हैं तबतक जो कुछ भी उचित होगा, मैं उन्हें दूंगा। जानबूझ कर मैं उनकी मृत्यु नहीं होने दूंगा। हां, यदि आपको स्वीकार न हो तो आप अपनी पत्नी को ले जा सकते हैं।"

गांधीजी के साथ उस समय उनके पुत्र भी थे। उन्होंने उससे पूछा। उसने कहा, "आपकी बात मुझे स्वीकार है। बा को मांस किसी भी हालत में नहीं दिया जायगा।"

इसके बाद गांधीजी बा के पास गये। वह इतनी अशक्त थीं कि उनसे कुछ पूछना अच्छा नहीं था। फिर भी यह धर्म-संकट की स्थिति थी। गांधीजी ने संक्षेप में उनसे सबकुछ कहा।

उन्होंने दृढ़ता से जवाब दिया, "मैं मांस का शोरवा नहीं लूंगी। मनुष्य की देह बार-बार नहीं मिलती। चाहे आपकी गोद में मैं मर जाऊं, लेकिन इस शरीर को भ्रष्ट नहीं होने दूंगी।"

गांधीजी ने बा को बार-बार समझाया, लेकिन वह टस-से-मस न हुईं। बोलीं, "मुझे यहां से ले चलिये।"

गांधीजी बहुत प्रसन्न हुए, लेकिन जब डाक्टर ने यह सुना तो वह बहुत क्रुद्ध हुआ। बोला, "आप तो बड़े कठोर व्यक्ति मालूम होते हैं। मैं कहता हूं, आपकी पत्नी यहां से जाने लायक नहीं हैं। रास्ते में उनकी मौत हो सकती है। फिर भी आप हठ करते हैं तो ले जाइये।"

उस समय रिमझिम-रिमझिम मेंह बरस रहा था। स्टेशन दूर था, लेकिन फिर भी भगवान पर भरोसा करके गांधीजी ने रिक्शा मंगवाया और उसी स्थिति में पत्नी को उसमें बैठाकर रवाना हो गये। मन-ही-मन वह भी कुछ डर रहे थे, लेकिन बा दृढ़ थीं और मार्ग के सारे संकट झेलते हुए वह फिनिक्स पहुंच गईं। वहां पर पानी के उपचार से धीरे-धीरे उनका शरीर पुष्ट होने लगा।

: ६५ :

आप जो कुछ देंगे मैं जरूर लूंगा

गांधीजी ने दक्षिण अफ्रीका से लौटकर अन्त में अहमदाबाद में बसने का निश्चय किया। कोचरब में उन्होंने एक मकान

लेकर उसीमें अपना आश्रम स्थापित किया।

अभी कुछ ही महीने वीते थे कि श्री अमृतलाल ठक्कर की सिफारिश पर एक अंत्यज परिवार को उन्होंने आश्रम में रख लिया। अब तो सहायक मित्र-मंडली में खलबली मच गई। जिस कुंए में मकान मालिक का हिस्सा था, वहां पानी भरना मुश्किल हो गया। चरस वाले पर आश्रमवासियों के छींटे पड़ जाते तो वह भ्रष्ट हो जाता। उसने उस अंत्यज परिवार को सताना शुरू कर दिया। गांधीजी ने उनसे कहा, "वे कुछ भी करें, तुम सहते जाओ। दृढ़तापूर्वक पानी भरते रहो।"

आश्रमवासियों ने ऐसा ही किया। उनकी सहन-शक्ति देखकर चरसवाले को लज्जा आई। उसने गालियां देना बन्द कर दिया, लेकिन पैसे की भी तो मदद बन्द हो गई थी। जो भाई मदद देने वाले थे, उन्होंने अंत्यज के भर्ती हो जाने के बाद आश्रम का बहिष्कार कर दिया। गांधीजी ने अपने साथियों से कहा, "हमें कहीं से भी कोई मदद न मिले तो भी हम अहमदाबाद नहीं छोड़ेंगे। अंत्यजों की वस्ती में जाकर उनके साथ रहेंगे और जो कुछ मिलेगा उससे अथवा मजदूरी करके अपना निर्वाह करेंगे।"

आखिर उनके भतीजे मगनलाल ने एक दिन उनसे कहा, "अगले महीने आश्रम का खर्च चलाने के लिए हमारे पास पैसे नहीं हैं।"

शान्त भाव से गांधीजी वोले, "तो हम अंत्यजों की वस्ती में जाकर रहेंगे।"

तभी एक दिन क्या हुआ! किसी लड़के ने आकर गांधीजी

से कहा, "बाहर मोटर खड़ी है। एक सेठ आपको बुला रहे हैं।"

गांधीजी गये। सेठ ने उनसे कहा, "मेरी इच्छा आश्रम की सहायता करने की है। आप स्वीकार करेंगे?"

गांधीजी बोले, "आप जो कुछ देंगे, मैं जरूर लूंगा। मैं इस समय आर्थिक संकट में हूं।"

सेठजी अगले दिन आने का वायदा करके चले गये। दूसरे दिन नियत समय पर मोटर का भोंपू बजा। सेठजी अन्दर नहीं आये। गांधीजी उनसे मिलने गये। उनके हाथ पर तेरह हजार के नोट रखकर वह चुपचाप वापस लौट गये।

: ६६ :

भारत की संस्कृति अनोखी है

साम्प्रदायिक उत्पात के समय नोआखाली-प्रवास में एक दिन मनु गांधीजी के घी मल रही थी और वह कुछ पेचीदा अंग्रेजी पत्र-व्यवहार सुन रहे थे। पत्र-व्यवहार पूरा हुआ तो मनु ने कहा, "आप मुझे कालेज में जाकर एम० ए० या बी० ए० तक पढ़ने देते तो आपका अंग्रेजी में होनेवाला काम मैं भी आसानी से कर सकती थी, परन्तु आपने मुझे पढ़ने ही नहीं दिया।"

गांधीजी बोले, "मुझे तो तुम्हें पढ़ना और गुनना दोनों सिखलाना है, उसका क्या होगा?"

मनु ने उत्तर दिया, "देखिए, महादेवकाका इतना पढ़े तभी

तो आपके निजी मंत्री बन सके। और भी जितने बड़े लोग हैं, सबके पास डिग्रियां हैं, इसीलिए तो वे इतने ऊंचे चढ़े।"

गांधीजी हंस पड़े। बोले, "मोटे सो खोटे। 'डिग्री' की जगह तुम 'उपाधि' शब्द काम में लो। उपाधि सचमुच उपाधिक ही है। मैं बैरिस्टर बना, इसका मुझे आज पश्चात्ताप होता है। सच कहूं कि मैं बैरिस्टर हूं, इसका मुझे कभी खयाल ही नहीं आता। इसलिए अपने अनुभव के आधार पर दूसरों को तो ऐसी उपाधि से बचाना ही चाहिए। आजकल की यूनीवर्सिटी की पढ़ाई में जो रटाई हो रही है वह मुझे खटकती है। देहात में अपार काम पड़ा है। विद्यार्थी पढ़ने और रटने में जितना समय गंवाते हैं, उतना यदि कोई रचनात्मक काम करने में लगायें तो देश की शक्ल बदल जाय। हां, इस पढ़ाई के पीछे ज्ञान प्राप्त करने का ध्येय हो तो अलग बात है। तब तो ज्ञान के पीछे पढ़ाई और पढ़ाई के पीछे ज्ञान यह मंत्र होना चाहिए। परन्तु आजकल परीक्षा के पीछे पढ़ाई और पढ़ाई के पीछे परीक्षा, यह दृष्टि होती है और फिर इस ज्ञान का उपयोग रुपया कमाने में होता है।"

इसके बाद ज्ञान की सीमा की लम्बी चर्चा करते हुए उन्होंने गीता के आधार पर ईश्वर के प्रति अर्पण होने की भावना की सराहना की। कहा, "ईश्वर का काम करने में तुम अपनी प्राप्त की हुई उपाधि का यहां उपयोग करोगी? मैं तुम्हारे मन में यही बात बिठाना चाहता था। कदाचित तुम पढ़ती होतीं तो आज कहां होतीं? मेरी चले तो मैं सभी कालेज के लड़के और लड़कियों को दंगे की इस आग में झोंक दूं। सचमुच यदि हमारे विद्यार्थियों के मन से उपाधि का मोह निकल जाय तो तुम देखोगी

कि सारी दुनिया के नक्शे में हिन्दुस्तान जो बिन्दुमात्र है, वह समुद्र जैसा हो जाय। जैसा देश वैसी ही उसकी रहन-सहन और वैसा ही उसका काम-काज होना चाहिए। परन्तु अंग्रेजों का न-करने लायक अनुकरण करने से ही हमारा पतन होगा। 'हंस कौए की चाल चलने लगता है तो मर ही जाता है, परन्तु वह अपनी चाल चला, इसलिए जीत गया।'

"यह कहानी तुम जानती हो न? कहानियां केवल कहानियों के लिए नहीं होतीं। उनकी तह में बहुत बड़ा उद्देश्य भरा होता है। भारत की संस्कृति अनोखी है। मैं जैसे-जैसे तुम्हें गीता समझाता जाऊंगा, वैसे-वैसे उसमें से नए अर्थ निकलते ही जायंगे। परन्तु आज इतना पचा लोगी तो यही काफी है। इसे लिख डालना, परन्तु लिखना केवल लिखने के लिए ही नहीं, गीता का अर्थ अमल में लाने के लिए है। आजका यह सारा पाठ गीता के आधार पर है।"

एक छोटे-से विनोद के कारण मनु को पच्चीस मिनट तक गांधीजी की ऐसी अमृतवाणी जीवन के पाठ के रूप में सुनने को मिली।

: ६७ :

मेरी जिन्दगी ही स्वयं एक प्रयोग है

फरवरी १९४५ में गांधीजी वर्धा आये तो श्रीमन्नारायण के पास ठहरे थे। उससे पहले दिसम्बर १९४४ में भी वह एक

वार यहां ठहर चुके थे। उस समय गांधीजी रात के समय तीन तकिये इस्तेमाल करते थे। लेकिन इस वार उन्होंने तकियों का प्रयोग बिलकुल ही छोड़ दिया। यह देखकर श्रीमन्नारायण ने हिचकिचाते हुए पूछा, "वापूजी, आजकल आप तकिये का प्रयोग क्यों नहीं करते?"

गांधीजी ने उत्तर दिया, "मैंने कहीं पढ़ा है कि शवासन से गाढ़ी नींद आती है। वही प्रयोग मैं कर रहा हूं।"

श्रीमन्नारायण बोले, "वापूजी, आपका पूरा जीवन प्रयोगों से भरा हुआ है। अब इस ढलती उम्र में आपको दूसरों पर प्रयोग करने चाहिए। इस समय ऐसे प्रयोगों के लिए आपका नाजुक स्वास्थ्य वहुत महंगा पड़ेगा।"

यह सुनकर गांधीजी मुस्कराये। बोले, "नहीं जी, मेरी जिन्दगी ही स्वयं एक प्रयोग है और मेरे ये प्रयोग केवल मेरी मौत के साथ ही वन्द होंगे।"

: ६८ :

योगी होने पर भी यह घाव मिट नहीं सकता

आगाखां महल में नजरवन्दी के समय जव गांधीजी का जन्म-दिन आया तो उनके साथियों ने उसे सुविधानुसार मनाने का निश्चय किया। उनके कमरों को फूलों से सजाया गया। सीढ़ियों पर रांगोली डाली। और भी वहुत कुछ किया। प्रार्थना

के समय दीवार पर फूल देखकर गांधीजी ने वा से कहा, "तू नहीं रोक सकी न इनको ?"

वा बोली, "मैंने मना तो किया था मगर ये नहीं माने ।"

गांधीजी सरोजिनी नायडू की ओर मुड़े और बोले, "मोहब्बत किसी पर लादनी नहीं चाहिए ।"

सरोजिनी नायडू ने तुरन्त दीवार पर से फूल उतरवा दिये और सीढ़ी के पास रखवा दिये । नाश्ते के समय फलों की सजी हुई टोकरी उनके सामने रखी गई। उन्हें हार पहनाये गये। सरोजिनी नायडू ने फूलों का हार पहनाया और मीराबहन ने सूत का । कटेली ने हार के साथ-साथ हरिजन कार्य के लिए ७४ रुपये भी भेंट किए ।

गांधीजी नाश्ता कर ही रहे थे कि मीराबहन और प्यारेलाल एक-एक बकरी के बच्चे को लिये हुए आ पहुंचे । उनके गलों में फूल-पत्तों के हार और 'सहनाववतु' मंत्र वाले गत्ते लटक रहे थे । मीराबहन ने उनकी ओर से एक छोटी-सी सुन्दर स्तुति कही और उनसे हाथ जुड़वा कर प्रणाम करवाया । फिर गांधीजी के हाथ से उन्हें रोटी दिलवाई । मगर उससे पहले ही उन्होंने एक-दूसरे के गले में पड़े हुए हारों को खाना शुरू कर दिया। गांधीजी बहुत हंसे ।

इसके बाद सुशीलाबहन ने अपने और बा के सूत का हार पहनाया । प्यारेलाल ने अपना हार पहनाया । फिर सब घूमने के लिए निकले । रास्ते में बापू ने रांगोली और सीढ़ी पर लिखे मंत्र देखे । सारी फूल मालायें और टोकरी के फूल महादेवभाई की समाधि पर ले गये । प्रार्थना की । प्रार्थना से पहले प्यारेलाल

ने महादेवभाई के सूत का हार गांधीजी को पहनाया। उनकी आंखों में आंसू झलक आये।

घूमते समय उन्होंने सुशीलाबहन से पूछा, "तूने भर्तृहरि की कथा सुनी है ?"

सुशीलाबहन ने उत्तर दिया, "जीहां, सुनी है।"

गांधीजी बोले, "योगी होने के बाद अंत में भर्तृहरि को अपनी पत्नी के पास भीख मांगने जाना था। उस समय उसे अपने भाई का और उसके प्रति अपने बर्ताव का स्मरण हो आया। बोल उठा, 'आ रे जखम जोगे नहीं जशे,' अर्थात् योगी होने पर भी यह घाव मिट नहीं सकता। यही बात महादेव के चले जाने के घाव पर भी लागू होती है।"

: ६९ :

कुमारप्पा, तुम सुखी जीव हो

अखिल भारत ग्रामोद्योग संग के स्थापित हो जाने के बाद उसके मार्ग-दर्शन के लिए गांधीजी मगनवाड़ी आकर ठहरे थे। उस समय उन लोगों का यह नियम था कि प्रत्येक व्यक्ति प्रतिदिन के कार्य में भाग ले। रसोईघर के झूठे और मैले बर्तन भी वह मांजते थे। एक दिन ऐसा हुआ कि यह काम गांधीजी और कुमारप्पा के हिस्से में आया। बस वे दोनों कुएं के पास बैठकर बर्तनों को रगड़-रगड़ कर उन पर लगी हुई क़ालिख छुटाने लगे।

सहसा कस्तूरबा उधर ग्रा निकलीं। वह यह दृश्य देखकर स्तब्ध रह गईं। इतना बड़ा महात्मा, कोहनियों तक हांथ कीचड़ में भरे, बर्तन रगड़े—यह वह कैसे देख सकती थीं! बस बरस ही तो पड़ीं। गांधीजी से बोलीं, "इस किस्म का काम ग्राप जैसे पुरुषों को शोभा नहीं देता। ग्रापके लिए इससे ग्रधिक ग्रच्छे काम करने को पड़े हैं। ग्राप यहां से उठकर चले जायं ग्रौर यह काम दूसरे पर छोड़ दें।"

उन्हें इतना कहकर ही सन्तोप नहीं हुग्रा। वह तपाक से ग्रागे बढ़ीं ग्रौर उन्होंने गांधीजी के हाथ में से देगची छीन ली। उनकी फुर्ती देखकर गांधीजी दंग रह गये। एक हाथ में नारियल का जूड़ा लिये वह कुमारप्पा की ग्रोर विस्फारित नयन से देखने लगे। फिर हँसकर बोले, "कुमारप्पा, तुम सुखी जीव हो। तुम्हारी धर्मपत्नी नहीं है, जो तुम्हें ग्रपने हुक्म का ताबेदार बना दे। किन्तु मुझे तो शान्ति बनाये रखने के लिए ग्रपनी पत्नी का कहना मानना पड़ेगा। इसलिए ग्रगर मैं बर्तन मांजने के काम में इन्हींको तुम्हारा साझी बनाकर चला जाऊं तो मुझे माफ करना।"

: ७० :

क्या वे तुम्हारे भी उतने ही बालक नहीं हैं

सेवाग्राम में नाना प्रकार के व्यक्ति ग्राते रहते थे। शिव की बारात की तरह उनके नाना रूप होते थे। एक बार क्या हुग्रा

कि कुछ अछूत जातियों के सत्याग्रही अपने समाज की किसी कथित शिकायत के विरुद्ध सत्याग्रह करने के लिए आश्रम में आ पहुंचे। गांधीजी तो अजातशत्रु थे। उन्होंने उन सत्याग्रहियों का स्वागत किया। उनसे कहा, "आप लोग अपने रहने के लिए जगह का चुनाव कर लें। आप चाहें तो मैं यह कुटिया आपके लिए खाली कर दूंगा।"

लेकिन उन लोगों ने कस्तूरबा की कुटिया में रहने की इच्छा प्रकट की। हँसते हुए कस्तूरबा ने पूछा, "मैं कहां रहूंगी ?"

गांधीजी बोले, "तुम्हें ज्यादा स्थान की जरूरत नहीं होगी और क्या तुम जानती हो कि मैंने तो अपनी कुटिया देने का प्रस्ताव किया था।"

बा बोलीं, "आपने इसीलिए किया था कि वे आपके बालक हैं।"

गांधीजी ने कहा, "क्या वे तुम्हारे भी उतने ही बालक नहीं हैं ?"

निरुत्तर बा मौन हो रहीं और वे मेहमान जबतक रहे, उन्हींकी कुटिया में रहे।

संदर्भ

इस पुस्तक के प्रसंग जिन पुस्तकों से संपादित रूप में लिये गए हैं, उनके नाम, प्रसंगों की संख्या तथा लेखकों का नाम साभार दिये जा रहे हैं।

अकाल पुरुष गांधी (जैनेन्द्रकुमार) २१, ३७
इंग्लैंड में गांधीजी (महादेव देसाई) ४, ६२
आत्म-कथा (मों० क० गांधी) १८, ६४, ६५
एकला चालोरे (मनुबहन गांधी) ८, २६, ६६
ऐसे थे बापू (आर० के० प्रभु) ५३, ५६
गांधी : व्यक्तित्व विचार और प्रभाव (संकलन) ३,
गांधी : व्यक्तित्व विचार और प्रभाव (संकलन) लक्ष्मी देवदास गांधी ५
गांधी : व्यक्तित्व विचार और प्रभाव (संकलन) तुलसी मेहर ६,
गांधी : व्यक्तित्व विचार और प्रभाव (संकलन) कमलनयन १०, ११
गांधी : व्यक्तित्व विचार और प्रभाव (संकलन) जगजीवनराम १७
गांधी : व्यक्तित्व विचार और प्रभाव (संकलन) रामनाथ सुमन १६
गांधी : व्यक्तित्व विचार और प्रभाव (संकलन) जानकीदेवी बजाज २६
गांधी : व्यक्तित्व विचार और प्रभाव (संकलन) सीताराम सेक्सरिया ३०
गांधी : व्यक्तित्व विचार और प्रभाव (संकलन) डा० युद्धवीरसिंह ३१
गांधी : व्यक्तित्व विचार और प्रभाव (संकलन) मार्तण्ड उपाध्याय ३३
गांधी : व्यक्तित्व विचार और प्रभाव (संकलन) अगाथा हेरिसन ३८
गांधी : व्यक्तित्व विचार और प्रभाव (संकलन) डा० राजेन्द्रप्रसाद ३६, ४१, ४२
गांधी : व्यक्तित्व विचार और प्रभाव (संकलन) होरेस अलैक्जैण्डर ४०

इस माला

की

पुस्तकें

□

साहित्य मंडल ● श्री कृष्ण जन्म-स्थान सेवा-संस्थान ● संयुक्त प्रकाशन